भगवतशरण उपाध्याय

# भारतीय नगरों की कहानी

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
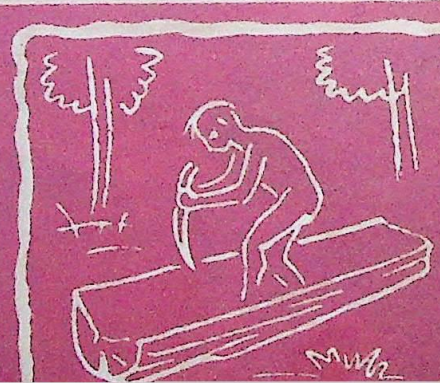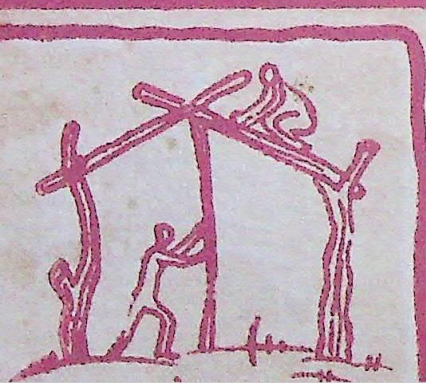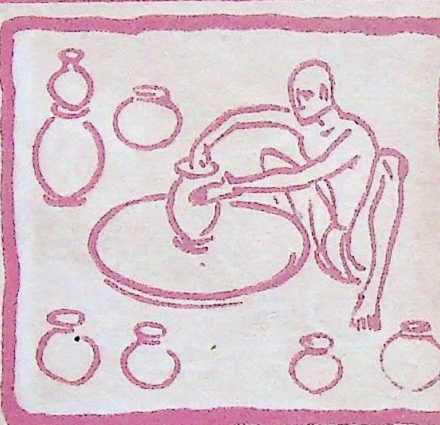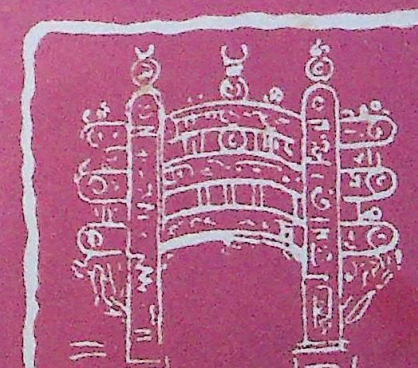
स्वदेश-परिचय-माला

# भारतीय नगरों की कहानी
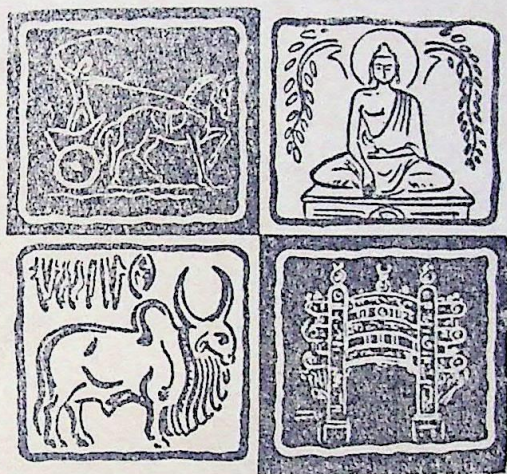
लेखक

भगवतशरण उपाध्याय

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

मूल्य : एक रुपया पचीस पैसे
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली–६
मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

# सूची

# १ | काशी

पतितपावनी गंगा के तट पर बसी काशी बड़ी पुरानी नगरी है। इतने प्राचीन नगर संसार में बहुत नहीं हैं। आज से हज़ारों बरस पहले नाटे कद के सांवले लोगों ने इस नगर की नींव डाली। तभी वहां कपड़े और चांदी का व्यापार शुरू हुआ।

वे नाटे कद के सांवले लोग शान्ति और प्रेम के पुजारी थे। किसीसे लड़ते-झगड़ते नहीं थे, अपने खेत जोतते थे, माल बेचते-खरीदते थे। छोटी-छोटी नावों में माल भर-भर गंगा की राह दूर तक वे चले जाते, बैलगाड़ियों में माल लाद देस-देस की यात्रा करते थे।

एक दिन दूर पच्छिम से आकर ऊंचे कद के गोरे लोगों ने उनकी नगरी छीन ली। वे ऊंचे लोग घोड़ों पर चढ़कर आए थे। इनके पास तीर-कमान थे, भाले-बरछे थे। फरसे और ढाल थे, बचाव के लिए टोप और कवच थे। बड़े लड़ाके थे वे। लड़ाई ही उनका पेशा था। दूर देशों से वे

लड़ते ही आए थे। उनके घर-द्वार न था, धन-दौलत न थी। घोड़े की पीठ उनका घर-द्वार था, लड़ने के हथियार ही उनकी धन-दौलत थे। वे भला हारते कैसे? उनके पास भला हारने को था ही क्या? और काशी उन्होंने अनायास जीत ली। परकोटों को तोड़कर वे नगर के भीतर घुस गए। नगर के मालिक बन गए। वे अपने को 'आर्य' कहते थे, श्रेष्ठ, महान।

आर्यों की अपनी जातियां थीं, अपने कुल-घराने थे। एक-एक जाति का एक-एक राजा होता था। उनका एक राज-घराना तब काशी में भी आ जमा। आर्य तब इस देश को चारों ओर जीतते जा रहे थे। उन्होंने पच्छिम में अनेक राज्य कायम किए। काशी के पास ही अयोध्या में भी तभी उनका राज-कुल बसा। उसे राजा इक्ष्वाकु का कुल कहते थे, सूर्यवंश, जिसके पुरखे सूर्य की सन्तान माने जाते थे। काशी में चन्द्र-वंश की प्रतिष्ठा हुई। सैकड़ों बरस उस नगर पर भरत राज-कुल के चन्द्रवंशी राजा राज करते रहे।

काशी में आर्यों के आने के बाद नई चहल-पहल शुरू हुई। बाबा विश्वनाथ (शिव) की पूजा तो होती ही रही साथ ही यज्ञ-हवन भी होने लगे, भांति-भांति के जानवर भी बलि दिए जाने लगे। नये प्रकार की पूजा शुरू करनेवाले
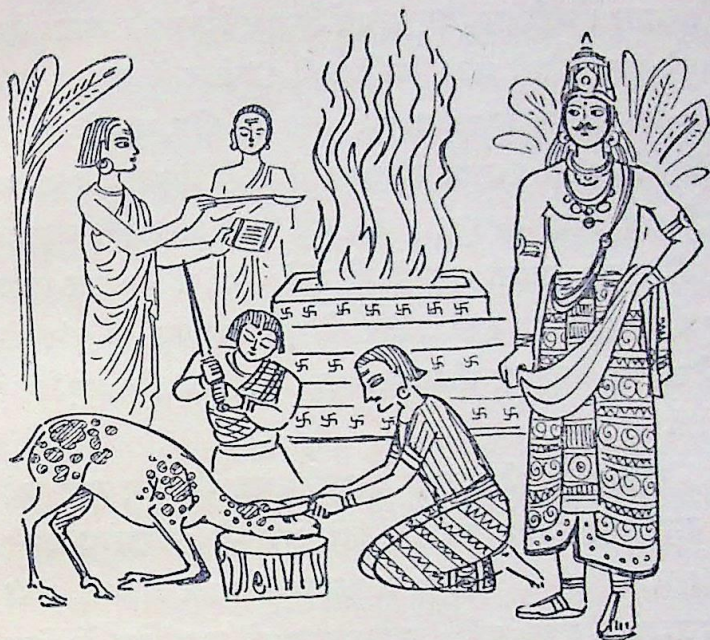
उस नगर के नये राजा थे, बृहद्रथ कुल के।

काशी तब आर्यों के पूरबी नगरों में से थी, पूरब में उनके राज की सीमा। उसके पूरब का देश अपवित्र माना जाता था। आर्य लोग मन्तर और झाड़-फूंक से अपना रोग-व्याधि उसी पूरब के देश की ओर भगाते थे।

आर्य लोगों के राजा कन्या के विवाह के लिए स्वयंवर किया करते थे। अनेक राजा बन-ठनकर आते और राज-कन्या जिसे चाहती उसे चुन लेती और उसीसे उसका ब्याह

हो जाता। यही स्वयंवर था क्योंकि इसमें लड़की अपना वर अपने-आप चुनती थी। कभी-कभी स्वयंवर में वीरता परखने का भी इन्तजाम होता था, जैसे रथ-दौड़, घुड़दौड़ होती और जो अपना रथ या घोड़ा सबसे आगे निकाल ले जाता वही लड़की को ब्याहता। जैसे बड़े धनुष की डोरी चढ़ानी होती, ऊपर नाचती मछली को नीचे तेल में देखकर बाण से बींधना होता। इसी प्रकार के एक स्वयंवर में पांडवों-कौरवों के पितामह भीष्म ने काशी नगरी की तीन लड़कियां जीती थीं।

महाभारत की लड़ाई के पहले मगध में राजा जरासन्ध ने बड़ा राज कायम किया। बड़े राज को साम्राज्य कहते थे। भारत का वह पहला साम्राज्य था। काशी भी उसी साम्राज्य में समा गई। महाभारत के नरसंहार में फिर जरासन्ध और उसका पुत्र सहदेव दोनों जूझ गए। कुछ काल बाद जब गंगा की बाढ़ ने पाण्डवों की राजधानी हस्तिनापुर को डुबा दिया तब पाण्डव इलाहाबाद जिले में जमुना के तीर कौशाम्बी में नई राजधानी बनाकर बस गए। उनका राज वत्स कहलाया और काशी पर मगध की जगह अब वत्स का अधिकार हुआ।

फिर ब्रह्मदत्त नाम के राजकुल का काशी पर कब्जा हुआ। उस कुल के राजा बड़े पंडित हुए। असल में उस

काल ज्ञान और पंडिताई ब्राह्मणों से क्षत्रियों के हाथ में आ गई थी। ब्राह्मण पंडित ज्यादातर पुरोहिताई करते थे पर ज्ञान का विचार क्षत्रिय राजा लोग करने लगे थे। ऐसा विचारवान पंडित पंजाब में कैकेय राजकुल में उस काल राजा अश्वपति था। तभी गंगा-जमुना के द्वाब में राज करनेवाले पांचालों में राजा प्रवहण जैवलि ने भी अपने ज्ञान का जादू चलाया। तभी जनकपुर, मिथिला में विदेहों का राजा जनक हुआ, जिसके दरबार में याज्ञवल्क्य के से ज्ञानी महर्षि और गार्गी जैसी पंडिता नारियां शास्त्रार्थ करती थीं, तभी काशी नगरी का राजा अजातशत्रु हुआ जो आत्मा और परमात्मा के ज्ञान में अनुपम था। ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध पर, जन्म और मौत पर, लोक-परलोक पर तब देश में विचार हो रहे थे। इन विचारों को उपनिषद् कहते हैं, इसीसे यह काल भी उपनिषत्काल कहलाता है। तब काशी का भी उपनिषत्काल था।

जमाना अब बदल गया था। जैसे ब्राह्मण की जगह क्षत्रिय महान माने गए वैसे ही कर्मकांड, पुरोहिताई और पशुबल की जगह अमर आत्मा और जन्म-मरण पर विचार होने लगे। अहिंसा का बोलबाला हुआ। बड़े-बड़े राज-कुमार अपना भोगविलास, राजपाट छोड़ सत्य की खोज में संन्यासी हो गए। वैशाली-मिथिला के लिच्छवियों

में इसी प्रकार के साधु वर्धमान महावीर हुए, कपिलवस्तु के शाक्यों में गौतम बुद्ध। उन्हीं दिनों काशी का राजा अश्वसेन हुआ। पार्श्व उसीका बेटा था, बड़ा विचारवान और ज्ञानी। उसने राजपाट छोड़ जनता के कल्याण के लिए चोरी, झूठ, हिंसा और धन के खिलाफ प्रचार किया। उसीके विचारों का प्रचार कर महावीर ने जैन धर्म की बुनियाद डाली।

उन दिनों भारत में चार राज्य प्रबल हो रहे थे जो एक-दूसरे को जीतने के लिए, आपस में बराबर लड़ते रहते थे। ये थे मगध (दक्खिन बिहार), कोसल (अवध), वत्स और उज्जयिनी। कभी काशी वत्सों के हाथ में जाती, कभी मगध के और कभी कोसल के। महावीर-बुद्ध से कुछ काल पहले, पार्श्व से कुछ ही बाद कोसल-श्रावस्ती के राजा कंस ने काशी को जीतकर अपने राज में मिला लिया। उसी कुल के राजा महाकोशल ने तब अपनी बेटी कोशलदेवी का मगध के राजा बिंबसार से ब्याह कर 'चूड़ास्नान' (दहेज-जेबखर्च) के रूप में काशी की सालाना आमदनी एक लाख हर साल अपनी बेटी-दामाद को देना शुरू किया और इस तरह काशी मगध के हिस्से में जा पड़ी। कहां तो काशी पवित्र और मगध अपवित्र कहलाते थे, अब पवित्र काशी पर अपवित्र मगध का चंगुल पड़ा।

पर काशी के भाग का निपटारा यहीं नहीं हुआ। राजाओं की छीना-झपटी में आज वह एक के हाथ में थी, कल दूसरे के। राज के लोभ से मगध के राजा बिंबसार के बेटे अजातशत्रु ने पिता को भूखों मारकर गद्दी ले ली। तब विधवा बहन कोशलदेवी के दुःख से दुःखी उसके भाई कोसल के राजा प्रसेनजित ने काशी की आमदनी अजातशत्रु को देनी बंद कर दी। फिर तो मगध और कोसल में समर छिड़ गया। कभी काशी कोसल में, कभी मगध के हाथ लगी। अन्त में अजातशत्रु जीता और काशी उसके बढ़ते हुए साम्राज्य में समा गई। कुछ काल बाद मगध की राजधानी राजगृह से उठकर गंगा और सोन के तीर पाटलिपुत्र (पटना) में जा बसी, पर काशी का भाग न फिरा।

गौतम तप के बाद गया में ज्ञान प्राप्त कर काशी के पास हिरनों के जंगल सारनाथ में आए। वहां तप के समय उनके पांच साधु साथी थे, जो बुद्ध के तप छोड़ देने से नाराज होकर सारनाथ चले आए थे; उन्हींको सबसे पहले अपने ज्ञान का उपदेश करने के विचार से बुद्ध पहले सारनाथ आए और वहीं काशी के पास उन्होंने अपने पहले उपदेश किए। पहली बार उन्होंने अपने धर्म के चक्के को घुमाया। उसी चक्के का रूप हमारे झंडे पर बना है। उसी सारनाथ में अशोक ने अपने स्तूप और खंभे खड़े किए।

खंभे के सिंह भी हमारे झंडे का गौरव हैं। तब से देश-विदेश से बौद्ध धर्म के पंडित बराबर सारनाथ-काशी आते रहे हैं।

मगध के राजकुल बदले। शैशुनागों के बाद नन्द आए, नन्दों के बाद मौर्य, मौर्यों के बाद शुंग और शुंगों के बाद कण्व। यानी क्षत्रियों के बाद उनका नाश करनेवाले शूद्र, फिर क्षत्रिय, तब ब्राह्मण ; पर काशी की काया मगध से बंधी रही।

नन्दों के शूद्र-शासन से काशी की गति बिगड़ चली पर ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने उसे सहारा दिया। फिर मौर्यों के अधिकार में आकर तो उसे वह देखना पड़ा जो उसने कभी न देखा था। अशोक ने अपने अहिंसा के उत्साह में पशु-वध बन्द कर दिया। था तो वह ठीक ही पर उससे ब्राह्मणों की पुरोहिताई बन्द हो गई, यज्ञ-हवन बन्द हो गए और ब्राह्मणों और पुराने विचारों की हिन्दू जनता में बड़ा असन्तोष फैला।

ब्राह्मणों के नाते और अशोक के कुल के राजा बृहद्रथ के सेनापति और पुरोहित पुष्यमित्र शुंग ने अपने राजा को मारकर मगध की गद्दी पर अधिकार कर लिया। तभी ब्राह्मणों के पक्ष में मनुस्मृति नाम का धर्मशास्त्र बना और संस्कृत भाषा और पुरानी पुरोहिताई का फिर एक बार बोलबाला हुआ। यज्ञ-कर्मों का फिर काशी केन्द्र हुई। बौद्धों की बगावत और देश के दुश्मनों से उनके मिल जाने

से पुष्यमित्र ने जो उनके मठ और विहार जला डाले तो काशी की महिमा बढ़ी।

कुछ काल पहले काशी की ही राह चलकर विदेशी ग्रीक-यवनों की सेना पाटलिपुत्र गई थी, कुछ काल बाद विदेशी शक-अम्लाट ने पाटलिपुत्र लूटने के पहले काशी को भी लूटा। फिर कुशानों के राजा कनिष्क का उस महान नगरी पर अधिकार हुआ।

उस विदेशी चंगुल से काशी को छुड़ाया पद्मावती के भारशिव नागों ने। काशी का जितना महत्त्व उस काल बढ़ा उतना कभी न बढ़ा। नाग क्षत्रिय शिव के पुजारी थे और अपनी पीठ पर वे शिवलिंग धारण करते थे। इसीसे वे कहलाते भी 'भारशिव नाग' थे। उनके राजाओं ने बार-बार विदेशी कुशानों से लोहा लिया, बार-बार अश्वमेध कर उन्हें हराया और जब-जब उन्होंने अश्वमेध किया, काशी की गंगा में ही उन्होंने स्नान किया। इस प्रकार उन्होंने काशी के गंगा-तट पर दस अश्वमेध किए, जिससे वहां के सबसे प्रसिद्ध घाट का नाम ही दशाश्वमेध पड़ गया जो आज तक चलता है।

नागों के बाद गुप्तों का साम्राज्य खड़ा हुआ। हूणों ने उसे तोड़ दिया। पर गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त ने उनसे मोर्चा लिया। काशी के पास ही उस राजा के खड़े किए पत्थर के

खंभे पर खुदा है—'हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता । भीमावर्तकरस्य ।' स्कन्दगुप्त की भुजाओं के हूणों से सहसा टकरा जाने से धरती कांप उठी, भयानक आवर्त (पानी में घूमनेवाला गढ़ा) बन गया । इससे उस देश-भक्त के देश-प्रेम का पता चलता है । काशी के अनेक नागरिक उस युद्ध में लड़े होंगे ।

गुप्तों के बाद भारत की राजलक्ष्मी पाटलिपुत्र से उठकर कन्नौज चली गई । हर्षवर्धन का तब काशी पर अधिकार हुआ । पर कुछ ही काल बाद कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य ने काशी की दिग्विजय की। शंकर और मण्डन-मिश्र का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ यहीं हुआ था । कहते हैं कि मण्डन-मिश्र के आसपास ज्ञान का इतना विस्तार था कि पिंजरे में रहनेवाली उनकी शुक-सारिकाएं भी संस्कृत बोलतीं और वेद-मन्त्र पढ़ती थीं ।

धीरे-धीरे कन्नौज के राजा गुर्जर-प्रतीहार हुए । तब काशी बंगाल के पालों के हाथ से निकलकर उनके अधिकार में चली गई । और उनके बाद ही जब त्रिपुरी का कलचुरी राजा गांगेयदेव काशी का स्वामी था, तभी महमूद गजनवी के पंजाब के शासक नियाल्तगीन ने उसपर हमला कर उसे लूटा । काशी पर इस्लाम का वह पहला हमला था । जब तक त्रिपुरी का गांगेयदेव उस नगरी की रक्षा के लिए तैयार

हुआ, तब तक नियाल्तगीन नगर को लूट कुछ ही घण्टों में चलता बना ।

जब कन्नौज के गहड़वाल उत्तर भारत के राजा हुए तब अपने पूर्वी इलाकों की रक्षा के लिए उन्होंने काशी को अपनी दूसरी राजधानी बनाया । उस कुल का आखिरी राजा जयचन्द था । शहाबुद्दीन गोरी ने उसे परास्त कर काशी
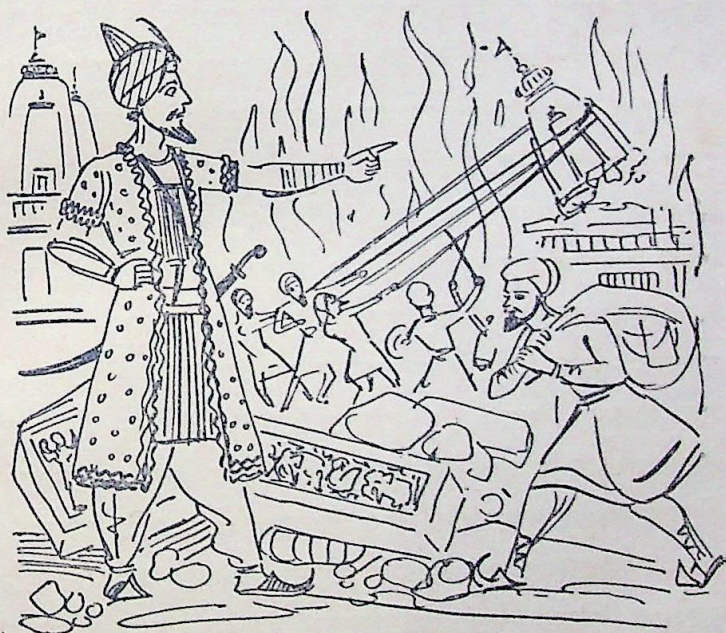
को बुरी तरह लूटा। उसके मन्दिर में बड़ा धन भरा था, गोरी सब उठा ले गया । ऊंचे भवनों के कलस-कंगूरे उसने

तोड़ दिए। उसीके सेनापति बख्तयार ने जब बंगाल जीता तब उसकी कुछ चोटें काशी को भी राह में झेलनी पड़ी थीं।

तब से दिल्ली में मुसलमानी सल्तनत कायम हुई। काशी उसी सल्तनत के कब्जे में आई और जब दूर के इलाकों पर उसकी पकड़ कमजोर हुई तब जौनपुर के बादशाहों ने उसपर अधिकार कर लिया। बाबर ने दिल्ली पर अधिकार कर काशी ले ली पर उसके बेटे हुमायूं को देश से बाहर भगा शेरशाह अफ़गान ने काशी को भोगा। शेरशाह और अकबर दोनों के शासन में काशी में अमन-चैन रहा और उस नगरी ने सुख की सांस ली। कुछ ही काल पहले काशी का जुलाहा कबीर रामानन्द का चेला हुआ था। रामानन्द के चेले हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। इस्लाम की अनीति से मुसलमान हुए हजारों मुसलमानों को उन्होंने शुद्ध किया था। कबीर हिन्दू-मुसलमान दोनों की देन था। दोनों धर्मों की बुराइयां उसने बड़ी हिम्मत से दिल खोलकर रख दीं, दोनों की अच्छाइयों का प्रचार किया। उसका जीवन इतना पवित्र, इतना उदार था कि मरने पर यह निश्चय करना कठिन हो गया कि वह हिन्दू था या मुसलमान, कि उसका दाहकर्म किया जाए या उसे दफनाया जाए।

अकबर के साम्राज्य के सबसे महान साधु तुलसीदास थे। उन्होंने अपनी रामायण (रामचरितमानस) काशी के ही अस्सी घाट पर लिखी। देश के कोने-कोने में उसका प्रचार हुआ, जन-जन का मन उसके स्पर्श से पवित्र हुआ।

शाहजहां ने अकबर का पोता होकर भी काशी में मन्दिरों का बनना रोक दिया पर वहां के महान पंडित जगन्नाथ का बड़ा सम्मान किया। इसी जगन्नाथ ने मुसलमान हो जाने पर अपनी शुद्धि के लिए पतित-पावनी गंगा की स्तुति में 'गंगालहरी' लिखी जो संस्कृत साहित्य का मधुर काव्य है।

शाहजहां के विजयी बेटे औरंगजेब ने काशी पर कुदृष्टि की। उसके मन्दिर तोड़ दिए, नगर को बुरी तरह लूटा। बाबा विश्वनाथ का मन्दिर मस्जिद बन गया। उसकी कैद से भागकर शिवाजी ने साधु के रूप में काशी में दो दिन शरण ली। कुछ काल उसपर मरहठों का भी अधिकार रहा और उसके मन्दिरों के भाग फिर एक बार जगे।

मुगलों के सम्राट शाहआलम ने जब बंगाल की दीवानी अंग्रेजों को सौंप दी तब काशी कम्पनी के हाथ लगी। काशी के राजा चेतसिंह ने कम्पनी के गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स को उसकी मनमानी से चिढ़कर नगर से मार भगा दिया। पर हेस्टिंग्स लौटा, अंग्रेजों का अधिकार नगर पर फिर हो गया।

सन् सत्तावन की आज़ादी की लड़ाई में काशी के नागरिकों ने भी अपने हाथ के करतब दिखाए और एक दिन इसी काशी में गोखले ने कांग्रेस की विशाल सभा का संचालन किया। आज़ादी की लड़ाई में काशी ने बार-बार बलिदान किए।

इस प्रकार काशी की नगरी ने बदलते ज़माने देखे, हमलों की धमक सुनी, तलवारों की चमक देखी। पर शस्त्र की झंकार के साथ ही शान्ति और ज्ञान की उसकी गूंज जो उठी तो उसने दिशाओं को भर दिया। हज़ारों साल पुरानी काशी आज भी 'तीनों लोकों में न्यारी' है।

# २ | प्रयाग

प्रयाग (इलाहाबाद) भी आज से हजारों साल पहले गंगा और जमुना के संगम पर बस गया था। उस संगम को त्रिवेणी कहते हैं। नदियां तो दो ही हैं, गंगा और जमुना, पर सदा से एक तीसरी नदी सरस्वती के भी छिपे-छिपे उन दोनों से आ मिलने की बात कही गई है, जिससे उस संगम का नाम त्रिवेणी पड़ा। पहले आर्य लोग पानीपत के पास कुरुक्षेत्र में बसे थे और सरस्वती के तीर अपने यज्ञ-हवन करते थे। वह सरस्वती वहीं रेत में सूख गई थी। आर्य लोग अपनी उसी पुरानी बस्ती से उठकर पूरब में इसी गंगा-जमुना के संगम पर जो पीछे आ बसे और वहां बड़े उत्साह से अपने यज्ञ-होम करने लगे तो उनकी नई बस्ती का नाम ही प्रयाग यानी वह स्थान पड़ गया जहां यज्ञ वगैरह अधिकाधिक होते थे। सरस्वती के तीर की पूजा जैसे लौट आई और आर्यों को लगा कि वे सरस्वती के तीर पर ही बसे हैं, इससे वे रेती में खोई उस धारा का नाम भी लेने लगे और इस संगम का नाम तीन नदियों का संगम

'त्रिवेणी' पड़ गया ।

त्रिवेणी-संगम का वर्णन संस्कृत में खूब हुआ है। वाल्मीकि ने अपनी रामायण और कालिदास ने अपने रघुवंश में गंगा की उजली और जमुना की नीली धाराओं का सुन्दर वर्णन किया है । प्राचीन काल में अनेक ऋषियों ने वहां अपना आश्रम बनाया और त्रिवेणी में स्नान की बड़ी महिमा हुई । उसीसे प्रयाग तीर्थराज, तीर्थों का राजा माना गया। राम जब पिता की आज्ञा मान वनवास के लिए चले तब पहले प्रयाग में ही रुके और भरद्वाज मुनि के उन्होंने उपदेश सुने ।

गंगा-जमुना का द्वाब प्राचीन काल में अन्तर्वेद कहलाता था । पीछे यह भूमि राजनीति में बड़ी विख्यात हुई । बड़े-बड़े राज इस भूमि पर खड़े हुए। प्रयाग उसी अन्तर्वेद की पूर्वी सीमा पर बसा उसका पूरब का द्वार था । हस्तिनापुर के बाढ़ से नष्ट हो जाने पर पाण्डव-कुल के राजा इसी अन्तर्वेद में चले आए । और उन्होंने प्रयाग से थोड़ी ही दूर पच्छिम हटकर इलाहाबाद के ज़िले में ही कौशाम्बी में अपनी नई राजधानी बसाई । कौशाम्बी का राजा उदयन बड़ा रसिया था । संस्कृत साहित्य में उसके प्रेम की कथा बार-बार कही गई है । कौशाम्बी जाते समय अनेक बार बुद्ध ने प्रयाग में ही डेरा डाला था ।

अशोक ने अपने शांति के संदेश पत्थर के खंभे पर खुदवाकर उसे कौशाम्बी में खड़ा किया। वही खंभा आज इलाहाबाद (प्रयाग) के किले में खड़ा है। अशोक के पीछे उसके वंशज बृहद्रथ को मारकर जब पुरोहित पुष्यमित्र शुंग ने मगध में अपना राज्य कायम किया तब प्रयाग उस नये राज का इलाका बना। बौद्ध पुष्यमित्र के खिलाफ विदेशी यवन राजा मिनान्दर को चढ़ा लाए पर प्रयाग के पास ही दोनों में जो घमासान युद्ध हुआ उसमें मिनान्दर को मारकर पुष्यमित्र ने अपने साम्राज्य की सीमा पंजाब में सिंधु नदी तक बढ़ा ली।

प्रयाग की राह जाकर शक—अस्लाट ने पाटलिपुत्र (पटना) को लूटा था और कुशानों की सेना भी उसी राह वहां पहुंची थी। भारशिव नागों ने तब कुशानों से प्रयाग को मुक्त किया था। इसी अन्तर्वेद (गंगा-जमुना का द्वाबा) से गुप्त सम्राटों की शक्ति उठी थी। तब उसका केन्द्र प्रयाग ही था। समुद्रगुप्त जब दिग्विजय के लिए निकला तब नाग राजाओं की सम्मिलित सेना ने प्रयाग के पास ही उसके घोड़ों की बाग रोकी पर उस गजब के लड़ाके ने नागों की शक्ति तोड़ दी और अपनी दिग्विजय का ब्योरा अशोक के उसी खम्भे पर खुदवाया जिसपर अशोक ने अपने शांति के सन्देश खुदवाए थे।

गुप्तों के बाद प्रयाग के स्वामी पहले मौखरी हुए, फिर उनका सम्बन्धी थानेश्वर का राजा हर्षवर्धन हुआ। तब उत्तर भारत की राजधानी कन्नौज थी। हर्ष ने तीर्थराज प्रयाग की महिमा अपने दान से और बढ़ाई। बड़े प्राचीन काल से उसके संगम पर स्नान होता आया था, पर अब हर पांचवें साल हर्ष अपने खज़ाने की संचित संपत्ति वहां गरीबों को दान करने लगा। सभी प्रकार के साधु-अभ्यागत-मंगते आकर उसका दान लेते। एक बार तो हर्ष ने अपना सब कुछ दान कर दिया, यहां तक कि उसे अपनी बहिन

राज्यश्री से मांगकर कपड़े पहनने पड़े थे। चीनी यात्री हुएनत्सांग ने उस दान का आंखों-देखा वर्णन किया है। हर पांचवें साल होनेवाले इस मेले का नाम महामोक्ष-परिषद् था। उसीने धीरे-धीरे कुम्भ का रूप धारण किया।

इस काल से गहड़वाल राजा जयचन्द्र के समय तक प्रयाग अधिकतर कन्नौज के ही अधिकार में ही रहा। कश्मीर के ललितादित्य मुक्तापीड़ ने कन्नौज के राजा यशोवर्मन को हराकर इसी त्रिवेणी में स्नान किया। यशोवर्मन के प्रसिद्ध राजकवि भवभूति ने भी अनेक बार प्रयाग के इस पावन संगम पर स्नान कर पुण्य-संचय किया था।

पहले मगध उत्तर भारत का विधाता रहा था और उसकी राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) शक्ति का केन्द्र रही थी। पर अब राजलक्ष्मी वहां से उठकर कन्नौज पर छा गई थी, जिससे सभी प्रबल राजा उसे अब अपने अधिकार में करने के लिए आपस में जूझने लगे थे। बंगाल के पाल राजा, राजपूताने के गुर्जर-प्रतीहार राजा और दक्खिन के राष्ट्रकूट (राठौर) राजा उसके लिए आपस में टकराने लगे और कन्नौज जब जिसके हाथ जाता, प्रयाग भी उसी-का ही रहता।

बंगाल के धर्मपाल ने एक बार कन्नौज पर अधिकार कर लिया पर राष्ट्रकूट राजा इन्द्र ने प्रयाग के पास ही उसे

हराकर भागते पालराज से उसके छत्र-चंवर छीन लिए। फिर उसने इलाके को लूट प्रयाग के मन्दिरों में लूटे धन का एक अंश चढ़ा दिया। राष्ट्रकूटों ने जो दक्खिन से प्रतीहारों को खदेड़ा तो उन्होंने कमज़ोर कन्नौज पर अधिकार कर लिया।

प्रतीहारों के बाद गहड़वाल आए। उन्हींके समय जयचन्द्र पर शहाबुद्दीन गोरी ने हमला किया। जमुना-तीर चन्दवारा के मैदान में दोनों में घमासान युद्ध हुआ और वीरवर बूढ़ा जयचन्द्र अपनी मुट्ठी-भर सेना के साथ लड़ता वीरगति को प्राप्त हुआ। काशी लूटने जाते समय गोरी ने प्रयाग को भी वैसे ही लूटा जैसे कभ नियाल्तगीन ने उसे लूटा था। उसके बाद प्रयाग भी कन्नौज के साथ ही दिल्ली की सल्तनत का इलाका बना और बराबर बना रहा। प्रयाग वाले इलाके का केन्द्र इलाहाबाद ज़िले में ही कड़ा था। अब कड़ा का इतिहास प्रयाग का इतिहास बन चला।

कड़ा के सूबेदारों ने अनेक बार विद्रोह किए। कतलग़-खां, अरसलखां, मच्छूमलिक, मिर्ज़ा, अलाउद्दीन सभी गद्दार थे। अलाउद्दीन ने तो जो भयानक कांड किया उसका सानी इतिहास में नहीं। कड़ा प्रयाग से चलकर वह देवगिरि पहुंचा और उसे लूट अनन्त धनराशि लिए जब वह लौटा तब उ के चचा जलालुद्दीन खिलजी ने दिल्ली से आकर

प्रयाग में उसका स्वागत किया। पर जब प्रसन्न चचा प्यार से गद्गद भतीजे को गले लगा रहा था तभी भतीजे ने उसकी छाती में कटार घुसेड़ दी।

प्रयाग का नगर जमुना के किनारे नई विधि से विशेषकर अकबर ने बसाया। उसका नाम इलाहाबाद पहले से ही पड़ चुका था। उसका किला त्रिवेणी के संगम पर अकबर ने ही बनवाया। उसकी कहानी भी बड़े मजे की है। सामने गंगा-पार झूंसी है। पहले वह चन्द्रवंशी राजाओं का राजधानी-प्रतिष्ठान था। बाद में वह भर्गों के अधिकार में रहा। फिर वत्सों के और प्रयाग के साथ ही उसने भी भाग्य के उतार-चढ़ाव देखे थे। कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य दोनों ने वहां कभी शास्त्रार्थ किया था। कुमारिल ने तो वहीं अग्नि-समाधि ली थी।

कहते हैं कि अकबर जब पटना से लौटकर त्रिवेणी के तीर खड़ा हुआ तब झूंसी के हिन्दू राजा को उसने बुलवा भेजा। राजा के हाथ-पैर मारे घबराहट के फूल गए। तब उसने अपने मन्त्री बीरबल से पूछा, अब क्या किया जाए? बीरबल ने ईंट-चूने से भरी कुछ नावें राजा के साथ अकबर के पास भेज दीं। अकबर चकित हो गया। उसने उसका भेद पूछा तो राजा ने बीरबल का नाम बताया। अकबर ने बीरबल को बुलाकर जो पूछा तो उसने कह दिया कि जहांपनाह
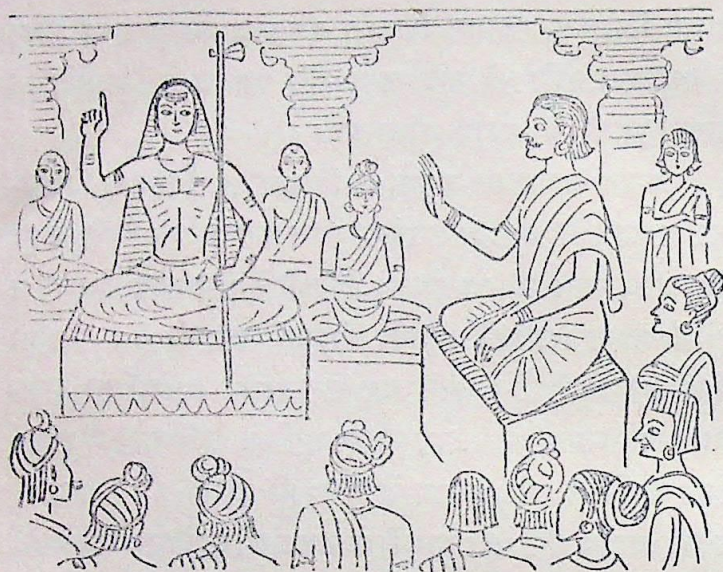
की तरह का बुद्धिमान बादशाह त्रिवेणी पर खड़े होकर उस कुदरती बचाव की जगह सम्भव न था कि किला बनवाने की बात न सोचे, इसीसे शुभ के लिए थोड़ा ईंट-चूना भेज दिया। अकबर उसे आगरा ले गया और अपने 'नवरत्नों' में उसे भी गिना। कुछ ही दिनों बाद इलाहाबाद का किला बनकर खड़ा हो गया।

अकबर के बेटे सलीम (जहांगीर) ने ही इलाहाबाद में बाप से बगावत शुरू की और उसी किले में अपने नाम के सिक्के ढलवाए। फिर उसके बेटे खुसरो ने भी अपने बाप जहांगीर के खिलाफ विद्रोह का झंडा वहीं खड़ा किया। वहीं

पकड़े जाने पर बाप के हुक्म से उसके छोटे भाई खुर्रम (शाहजहां) ने उसकी आंखें निकाल लीं। और वहीं बगावत का झंडा लेकर वह खुद अब जहांगीर के खिलाफ खड़ा हुआ।

अब तक प्रयाग पूरा-पूरा जमुना के तीर लम्बा बसा इलाहाबाद बन चुका था। औरंगजेब ने दिल्ली का तख्त पाने के बाद इलाहाबाद के मन्दिरों को भरपूर लूटा और उन्हें जमीन में मिला दिया। उसीके बड़े भाई और हिंदुओं के दोस्त दाराशिकोह ने इलाहाबाद को संवारा था; दारागंज बसाया था। वहीं त्रिवेणी के तट पर उपनिषदों के फारसी अनुवाद कराए थे। अब इलाहाबाद औरंगजेब की कट्टर नीति का शिकार था।

धीरे-धीरे इलाहाबाद कम्पनी के हाथ आ गया। बुज़दिल शाहआलम ने दिल्ली से आकर इसी इलाहाबाद में खुसरोबाग में क्लाइव को बंगाल और बिहार की दीवानी सौंप दी। दिल्ली सल्तनत के टखने टूट गए।

पर कम्पनी ने कुछ कम ज़ुल्म न किए और उत्तर भारत ने जब सन् सत्तावन के गदर में आजादी का झंडा उठाया तब इलाहाबाद ने भी बड़े बलिदान किए। उसके चौक में जो कुछ-एक पेड़ खड़े हैं उनकी डालों से सैकड़ों देशभक्त लटका दिए गए। लाट कैनिंग ने, मिण्टो पार्क में

विक्टोरिया का एलान पढ़ा और भारत की हकूमत इंगलैंड की पार्लियामेंट के अधिकार में आ गई।

जमाना फिर बदला और आज़ादी की लड़ाई फिर नये सिरे से छिड़ गई। इलाहाबाद उसका प्रबल केन्द्र बना। इलाहाबाद ने भारत को अनेक नेता दिए। आज़ाद भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू इसी नगर के थे जिन्होंने संसार की युद्ध-विरोधी राजनीति को संवारा है।
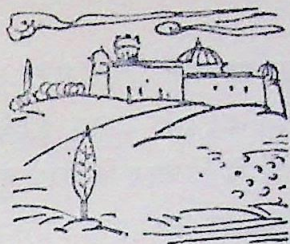
# ३ | उज्जयिनी

उज्जयिनी या उज्जैन की नगरी भारत की सात पवित्र नगरियों में गिना जाती है। कभी वह अवन्ती की राजधानी थी। आज भी वह मालवा की प्रधान नगरी है। अपने बढ़प्पन के कारण कभी वह विशाल भी कही जाती थी।

प्रद्योत और नन्द, मौर्य और शुंग, मालवा और शक-वाका टेक-परमार राजकुलों ने समय-समय पर उज्जैन में राज्य किया। उसका जाना हुआ इतिहास बुद्ध के समय आज से कोई ढाई हजार साल पहले शुरू होता है। उसका प्रताप पहले-पहल तभी प्रद्योत राजाओं की हुकूमत में बढ़ा। चंड प्रद्योत महासेन तभी हुआ जब मगध में अजातशत्रु, कोसल में प्रसेनजित और कौशाम्बी में उदयन राज्य करते थे। अपनी कठोरता के कारण वह चंड कहलाता था एवं बड़ी सेना के कारण महासेन।

प्रद्योत ने अपना राज्य धीरे-धीरे खूब बढ़ा लिया और एक बार तो मगध का राजा तक उससे डर गया था। पर असली कशमकश उसकी कौशाम्बी के वत्सों से चली। कौशाम्बी का राजा उदयन जितना विलासी था उतना ही

वीर भी था। जब उसका राज किसी तरह सर न हो सका तब प्रद्योत ने उसे जीतने का एक उपाय सोचा। उदयन वीणा बजाने और हाथियों के शिकार में बड़ा कुशल था। वीणा बजाकर वह हाथी पकड़ा करता था। एक दिन अवन्ती और वत्स की सरहद पर बनावटी हाथी छोड़कर उसने उदयन को लुभा लिया। उस हाथी के पेट में हथियारबन्द सिपाही थे। उदयन के वीणा बजाकर उसे पकड़ते ही उन सिपाहियों ने निकलकर उसे कैद कर लिया। महीनों उदयन उज्जैन में कैद रहा। प्रद्योत की वासवदत्ता नाम की एक बड़ी सुन्दर लड़की थी जिसे वीणा सीखने का बड़ा शौक था। प्रद्योत ने उदयन को ही उसे वीणा सिखाने को नियत कर दिया। उदयन और वासवदत्ता में धीरे-धीरे प्रेम हो गया और एक दिन हाथी पर वासवदत्ता को लेकर उदयन कौशाम्बी भाग गया। इस प्रकार वत्स फिर आजाद हो गया।

जब मगध में नन्दों का राज हुआ तब उन्होंने अनेक देश जीत लिए। उज्जैन भी उन्हींकी बढ़ती हुई हदों में समा गया। चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने नन्दों का संहार कर मगध में मौर्यों का राजकुल स्थापित किया। तब समुन्दर से समुन्दर तक पूरब से पच्छिम भारत पर चन्द्रगुप्त का ही शासन जमा। पच्छिमी भारत की रक्षा के लिए तब उज्जैन को उसने उधर की राजधानी बना दिया। उसका पोता प्रसिद्ध अशोक

राजा होने के पहले उजैज्न का शासक रहा था। उज्जैन तब समुद्र से आनेवाले माल और उत्तर से समुद्र को जानेवाले माल की सबसे बड़ी मण्डी बन गया। सारे एशिया और पूरबी यूरोप में उज्जैन की ख्याति फैली।

मौर्य-शासन का अन्त होने के कुछ काल बाद अवन्ती के इलाके का नाम बदलकर मालवा हो गया। पंजाब में तब अनेक वीर जातियां अपना पंचायती राज बनाकर रहती थीं। उन्हीं में एक जाति मालवों की थी। मालव वीर

किसान थे जो सदा एक हाथ में हंसिया दूसरे में तलवार धारण करते थे। रावी नदी के तट पर उन्होंने संसार-विजयी सिकन्दर को लोहे के चने चबवा दिए थे। मौर्यों ने उनकी आजादी पर हमला किया और मालव अपनी आजादी की रक्षा के लिए पूरबी राजपूताना होते हुए उज्जैन के चारों ओर अवन्ती में जा बसे। तभी से उस इलाके का नाम मालवा पड़ा।

उन्हीं दिनों विदेशी शकों के झुंड के झुंड सिन्ध से उज्जैन की ओर बढ़ रहे थे। मालवों और शकों में मुठभेड़ हो गई। मालव जीते और उनके मुखिया विक्रमादित्य ने उसी जीत की यादगार में प्रसिद्ध विक्रम-संवत् चलाया जो आज भी इस देश में चलता है और जिसका दूसरा नाम मालव-संवत् भी है।

शक जाति जब हार तो गई पर धीरे-धीरे उसकी शक्ति फिर बढ़ी और इस देश में उसके पांच राजकुल कायम हुए। उन्हींमें एक मालवा और उज्जैन का स्वामी हुआ। शक थे तो विदेशी पर उन्होंने इस देश में बसकर इस देश के रीति-रिवाज, भाषा आदि अपना लिए। उनके शासन में उज्जैन की शक्ति और प्रतिष्ठा खूब बढ़ी। ज्योतिष का सबसे बड़ा केन्द्र भारत में उज्जैन ही रहा है। उसे ज्योतिष का केन्द्र इन्हीं शकों ने बनाया। देश-विदेश सर्वत्र से उन्होंने

ज्योतिष के पंडित बुलाए और उस ज्ञान को बढ़ाया। संस्कृत भाषा की भी उन्होंने बड़ी सेवा की और जहां तब के ब्राह्मण राजा तक अपने लेख बोलियों में लिखाते थे, शक राजाओं ने संस्कृत को राजभाषा बनाया और अपने लेख उसीमें लिखवाए। शकराज रुद्रदामा का गिरनार का लेख संस्कृत-गद्य का पहला और सुन्दर नमूना है।

कुछ काल बाद जब गुप्त सम्राट भारत में प्रबल हुए तब उन्होंने पश्चिमी समुद्र तक देश जीत लिया। मालवा भी उन्हींके साम्राज्य में शामिल हुआ और उज्जैन को मौर्यों की ही तरह उन्होंने भी अपनी दूसरी राजधानी बनाया। समुद्री व्यापार में अब और भी उन्नति हुई और माल के आने-जाने में उज्जैन संसार का सबसे बड़ा बाज़ार बना। तब भारत का व्यापार पूरब में समुद्री द्वीपों से लेकर पच्छिम में रोम और मिस्र तक चलता था। उज्जैन उस सारे व्यापार-वैभव का स्वामी बना।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों का मालवा में अन्त किया था। उसकी सभा के नवरत्नों में से एक महाकवि कालिदास बहुत काल तक उज्जैन में रहा था। उसकी रचना में बार-बार उज्जैन का बखान हुआ है। वह नगर उसे बड़ा प्रिय था। काशी के विश्वनाथ की ही भांति उज्जैन के महाकाल शिव की बड़ी महिमा थी। वह मन्दिर सिप्रा के तट पर आज

भी खड़ा है। कालिदास ने उसका बड़ा सुन्दर वर्णन अपने काव्य मेघदूत में किया है।

चीन से आनेवाली भयानक हूण जाति ने गुप्तों का इतना प्रबल और विशाल साम्राज्य तोड़ डाला। कुछ काल के लिए हूणों का अधिकार भी मालवा पर जम गया, पर तुरन्त यशोवर्मा ने उन्हें वहां से निकालकर उज्जैन में अपना राज कायम किया। अभी मालवा हूणों की चोट से संभला भी न था कि गुर्जर-प्रतीहारों के राजा ने जोधपुर की दिशा से आकर उसपर हमला किया और उज्जैन के चारों ओर का इलाका रौंद डाला। फिर उनको वहां से निकालकर दक्खिन-राष्ट्रकूट कुछ काल के लिए उज्जैन के स्वामी हुए।

उज्जैन की ख्याति परमार राजाओं के समय फिर एक बार बढ़ी। उनका राजा मुञ्ज अपने भतीजे भोज की ही भांति अपने साहस, वीरता और विद्या के लिए प्रसिद्ध हो गया है। उसके शासन के समय उज्जैन ने उन्नति की चोटी छू ली। मुञ्ज का दूसरा नाम (विरुद) 'पृथ्वीवल्लभ' था। निश्चय वह उज्जैन का वल्लभ ही था। अनेक बार उसने दक्खिन के चालुक्य राजाओं को हराया, पर अन्त में जब गोदावरी लांघ उनके राज में दूर भीतर घुस गया तब चालुक्यों ने उसे पकड़ लिया और हाथी से कुचलवा डाला। उज्जैन का वल्लभ अब नहीं रहा। वह अनाथ हो गया।

मुञ्ज के भतीजे राजा भोज ने वहां से अपनी राजधानी हटाकर धारा नगरी में कायम की। साठ बरस तक भोज ने मालवा पर राज किया और इस बीच उसने दूसरों को लूटा, दूसरों ने उसे लूटा। मालवा लहूलुहान होता रहा, उज्जैन की लक्ष्मी डावांडोल होती रही। और एक दिन दुश्मन राजाओं ने मिलकर भोज पर हमला किया। वृद्धावस्था में भी भोज उनसे लड़ता रहा पर अन्त में एक ही साथ दो-दो मोर्चों पर लड़ता हुआ भोज जब पच्छिमी मोर्चे से पूरबी मोर्चे को संभालने बढ़ा तब उसकी मृत्यु हो गई। उज्जैन को शत्रुओं ने बुरी तरह लूटा। भोज ने अपनी राजधानी धारा नगरी को बनाया था, पर उससे उज्जैन का वैभव तनिक भी नहीं घटा। भोज की वीरता और विद्या के यश का लाभ उज्जैन को भी हुआ।

तभी भारत पर मुसलमानों के हमले होने लगे थे। गजनी का महमूद बार-बार इस देश पर धावे करने लगा था। उज्जैन कुछ काल अभी उनसे बचा रहा, यद्यपि देशी राजघराने उसे लूटते-खसोटते रहे। अलाउद्दीन खिलजी के समय उसके सेनापति मलिक काफूर ने मालवा को रौंद डाला और उज्जैन से सदा के लिए हिन्दू-सत्ता उठ गई। शीघ्र धारानगरी के पास ही मांडू में अफगान सुलतानों ने डेरा डाला और उज्जैन के भी, मालवा के साथ ही, वे स्वामी हुए।

तब मालवा और गुजरात के सुलतानों में एक-दूसरे को जीतने के लिए खूब कशमकश होती थी। जब-तब दोनों मेवाड़ के राणा के खिलाफ मिल जाया करते थे। एक बार राणा कुम्भा ने दोनों की मिली सेनाओं को बुरी तरह हरा-कर उस जीत की यादगार में चित्तौड़ का प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ खड़ा किया। मालवा और उज्जैन कुछ काल इस तरह मेवाड़ के अधिकार में रहे। फिर हुमायूं और शेरशाह ने उन्हें जीता। शेरशाह के बाद मालवा का अफगान राजकुल फिर प्रबल हुआ और बाजबहादुर और रूपमती के गीत

मांडू, धारा और उज्जैन सर्वत्र समस्त मालवा में गूंज चले। पर अकबर ने बाजबहादुर को दम न लेने दिया और मालवा को जीतकर अपने राज में मिला लिया। उज्जैन की स्वतन्त्रता सदा के लिए लुप्त हो गई।

उज्जैन ने वैभव और पतन, दोनों की राह देखी है। ऊंचे साम्राज्य भी उसमें कायम हुए, लुटेरों की चोट भी उसने सही। उसका महत्त्व निश्चय पहले का सा आज नहीं है, पर उसके राज में सदियों का गौरव छिपा है, उसके कण-कण में इतिहास पुकारता है।

# ४ | वैशाली
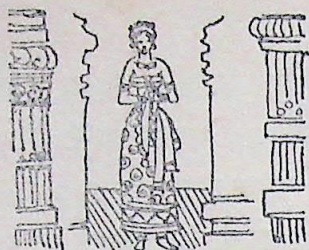
उत्तर बिहार के मुजफ्फरपुर ज़िले में एक गांव है, बसाढ़। वही प्राचीन वैशाली है, महावीर और बुद्ध के सम्बन्ध से पवित्र। दोनों ने वहां समय-समय पर निवास किया था, महावीर तो वहां जन्मे ही थे। पर वैशाली का गौरव केवल इसीसे नहीं है, इससे भी बढ़कर इस बात में है कि वह उन पंचायती राजों का केन्द्र था जिन्होंने सदियों साम्राज्यों की लोभ-लिप्सा से संघर्ष किया था। और जब उन्होंने उसे जीत लिया तब भी उसके लिच्छवियों और वज्जियों के पंचायती राजों (गणतन्त्रों) की ख्याति इतिहास में अमर बनी रही। जब तक जनता की आज़ादी का संसार में बोलबाला रहेगा, वैशाली के उन प्राचीन पहरुओं का नाम भी इस धरा पर बना रहेगा।

वैशाली पहले मिथिला के राजाओं के अधिकार में थी। बार-बार जनता ने राजाओं को हटाकर वहां जनता का अधिकार कायम किया। विदेहों के राजा जनक भी वहां बार-बार अपनी शक्ति जमाते रहे। वहां के राजा जनक कहलाते थे। मिथिला के राजा सीरध्वज जनक ने राम से अपनी बेटी
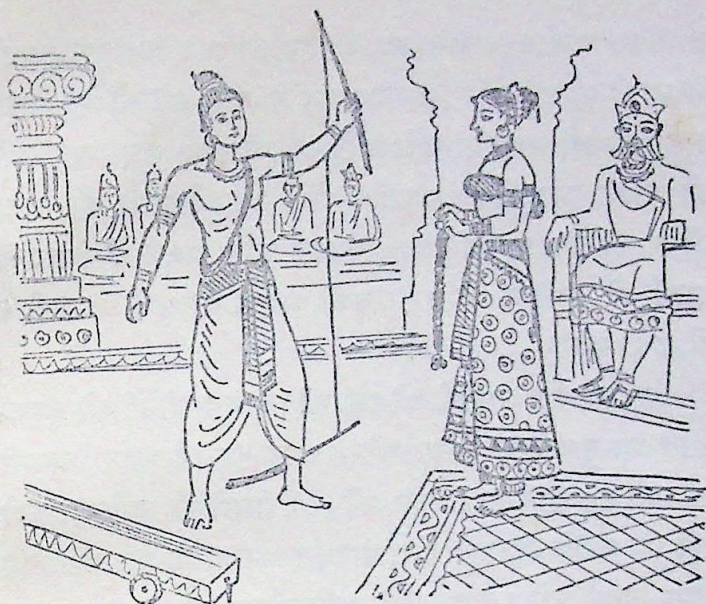
सीता का ब्याह कर अपने कुल का गौरव बढ़ाया था। जनता ने शीघ्र उस कुल का नाश कर वैशाली के पास ही मिथिला में अपना राज कायम किया। पर कुछ ही सदियों बाद जनक विदेह ने फिर राजकुल कायम कर वहां अपने यश का विस्तार किया। इतिहास ने करवट ली और जनता ने उसका तख्त उलटकर फिर अपना पंचायती राज स्थापित किया। पर मिथिला में नहीं, वैशाली में।

मिथिला में सीता ने जन्म लेकर नारी जाति के सिर गौरव का तिलक लगाया था। जनक ने अपनी सभा को

ज्ञान का अखाड़ा बनाया था, जहां याज्ञवल्क्य के से उपनिषदों के ज्ञानी संसार और जनम-मरन के भेद खोलते थे, जहां गार्गी की सी नारियां जटिल से जटिल प्रश्न कर महर्षियों को चकित कर दिया करती थीं। पर वैशाली का नया गौरव भी कुछ कम न हुआ। पंजाब और अवध में पंचायती राजों की कमी न थी पर उनकी शक्ति असल में वैशाली में ही फली-फूली।

कारण कि उन्होंने कोसल और मगध दोनों की हड़प-नीति का मुकाबला किया और जान पर खेलकर अपनी आजादी की बार-बार रक्षा की। वैशाली की शक्ति इतनी बढ़ी कि उसके रिसाले गंगा पारकर मगध के इलाकों पर धावा करने लगे। यह उसके भूमिलोलुप राजा अजातशत्रु की नीति का बदला था। और उससे घबराकर गंगा और सोन के कोने में वैशाली के लड़ाकों से उस इलाके की रक्षा के लिए कोट बनवाना पड़ा। यही कोट बाद में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) की नींव साबित हुआ।

अब अजातशत्रु ने वैशाली के पंचायती राज को जीत लेने की ही ठानी। पर उसको जीत लेना आसान न था। जब उसने बुद्ध से वैशाली जीतने का उपाय पुछवाया तब बुद्ध ने उसकी अजेयता के सात कारण बताए। कहा—जब तक वज्जियों के संघ में एकता है, जब तक उस संघ

की बैठकें जल्दी-जल्दी होती हैं, जब तक उनके भेद गुप्त रखे जाते हैं, जब तक प्राचीन परम्परा का उसमें आदर है, जब तक वृद्धों में उसका आदर है, जब तक वह नारी का सम्मान करता है, जब तक उसकी मंत्रणा का भेद सुरक्षित है, जब तक उसमें संयम है, तब तक वैशाली का संघ जीता नहीं जा सकता।

पर अजातशत्रु वैशाली को जीतने पर ही तुल गया था। उधर वैशाली ने भी अपनी रक्षा के लिए अपने गणतन्त्रों का संघ बना लिया था। एक-एक पंचायती राज गणतन्त्र कहलाता था, उनका एका संघ। इस प्रकार के वहां वज्जी, लिच्छवि आदि आठ गणतन्त्र थे, जो एकसाथ मिलकर संघ बन गए और उनका नाम वज्जिसंघ पड़ा। वैशाली जो पहले अकेले लिच्छवियों की राजधानी थी, अब समूचे वज्जिसंघ की राजधानी बनी। उसकी बैठकों का भवन संघागार कहलाता था। वहां आठों के ७७०७ नेता बैठकर बहुमत से किसी बात का निर्णय करते थे।

अजातशत्रु ने इन नेताओं में उनके गणतन्त्रों और वज्जिसंघ में साजिश से फूट डालना शुरू किया। अपनी नीति में वह सफल हो गया और धीरे-धीरे वह फूट का जहर आजादी के दीवानों में फैल चला। और एक दिन अजातशत्रु ने जो उसपर चोट की तो वह संघ तार-तार

होकर बिखर गया। मगध ने वैशाली पर अधिकार कर लिया।

वैशाली आज़ादी का पहरुआ रही थी। उसने जन-जन के हित की रक्षा, जन-जन को बराबरी का दर्जा दिया था। उसकी वेश्या अम्बपाली की उदारता से प्रसन्न होकर
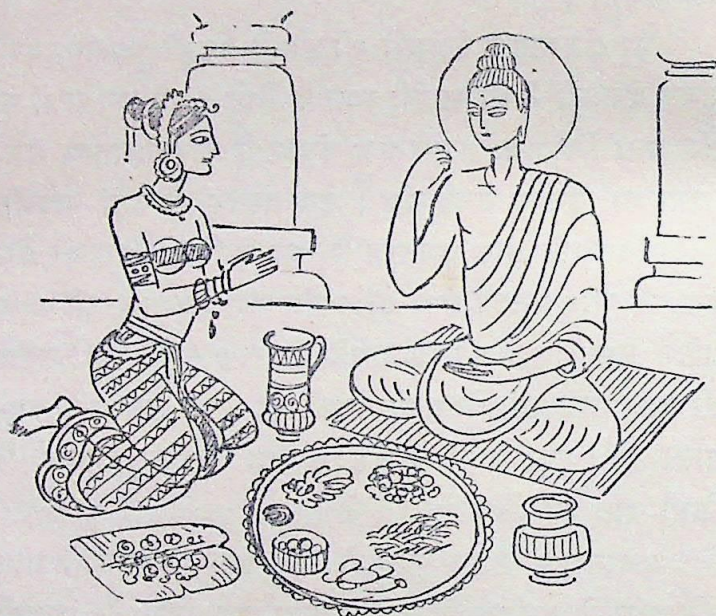
महात्मा बुद्ध ने राजाओं का निमंत्रण त्याग उसका आहार ग्रहण किया था। पर अब आज़ादी की वह प्रबल अर्गला साम्राज्यों के प्रहार से टूट गई।

फिर भी बहुत काल पीछे तक वैशाली के लिच्छवियों का गौरव इतिहास में बना रहा और जब गुप्तवंश के राजा चन्द्रगुप्त ने पाटलिपुत्र पर अधिकार किया तब उनके विरोध को शांत करने के लिए उसने उनकी कन्या कुमारदेवी को ब्याहा। उसने अपने सिक्कों पर कुमारदेवी और लिच्छवियों के नाम खुदवाकर अपना गौरव बढ़ाया और उसके इतिहास-प्रसिद्ध विजयी बेटे ने भी अपने सिक्कों पर अपने को 'लिच्छविदौहित्र' (लिच्छवियों का नवासा) लिखकर अपना मान बढ़ाया। पीछे भी वैशाली का महत्त्व कुछ काल तक बना रहा क्योंकि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने बेटे गोविन्द-गुप्त को अपना प्रतिनिधि बनाकर वहां सालों रखा था।

वैशाली मिट गई पर उसका गौरव इतिहास बन गया। और इतिहास कभी नहीं मिटता और आज भी जब हम संसार के आजादी के लड़ाकों की याद करते हैं तब वैशाली के लिच्छवियों और वज्जियों की याद बरबस ताजी हो आती है।

# ५ | पाटलिपुत्र
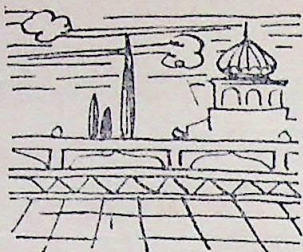
संसार के कम देशों ने अपने लम्बे इतिहास में इतनी उथल-पुथल देखी है जितनी भारत की प्राचीन राजधानी पाटलिपुत्र ने। उसने पच्छिम से पूरब जाती लुटेरी सेनाओं की धमक सुनी है, चमकती खूनी तलवारें देखी हैं, शांति के उपदेश सुने हैं, और वह आज भी पटना के नाम से बिहार की राजधानी बनी अपनी गौरव-गाथा के पन्ने उलट रही है; इतिहास बनाती जा रही है।

गंगा और सोन के संगम पर पाटलि नाम का एक गांव था, धीवरों का। अनेक बार वैशाली से राजगृह आते-जाते बुद्ध ने वहां गंगा को पार किया था, अनेक बार उपदेश दिए थे। वैशाली के वज्जियों ने जब मगध पर छापे मार-मार-कर अजातशत्रु की नींद हराम कर दी थी तब उस राजा ने वहीं एक कोट बनवा दिया था। उसके बेटे उदायी ने वहीं पाटलिपुत्र बसाया और अपनी राजधानी राजगृह के पहाड़ों से वहीं उठा ले गया।

बिंबसार के राजकुल के बाद नन्दों ने मगध का शासन अपने हाथ में ले लिया। महापद्मनन्द ने इतिहास का पहला

विशाल साम्राज्य स्थापित किया। वह पूरबी सागर से जमुना तक फैला हुआ था, पंजाब के दक्खिन से अवन्ती (मालवा) तक। काशी, कोसल और वत्स भी उसीकी बढ़ती सीमाओं में समा गए। उस शूद्र राजा के प्रताप ने क्षत्रियों का मान-मर्दित कर दिया। उसकी विशाल सेना के डर से संसार को विजय करनेवाले सिकन्दर को लौट जाना पड़ा।

पठानों के देश यूसुफजई के शलातुर गांव से आकर पठान ब्राह्मण पाणिनि ने पाटलिपुत्र में ही अपना व्याकरण लिखा, जिसकी कात्यायन ने वहीं व्याख्या की। शूद्र महा-पद्मनन्द ने क्षत्रिय राजाओं का संहार किया था, अब चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने मिलकर उस पाटलिपुत्र में उसका संहार किया। चन्द्रगुप्त के कुल के नाम पर नये राजकुल का नाम मौर्यवंश पड़ा।

सेल्यूकस नामक सिकन्दर के ग्रीक सेनापति ने भारत पर हमला किया। चन्द्रगुप्त ने उसे हराकर हिन्दूकुश तक के अनेक प्रान्त जीत लिए और ग्रीक राजकुमारी से विवाह कर उसे पाटलिपुत्र के राजमहल में रखा। अब ग्रीक राजदूत भी वहां रहने लगा। मन्त्री चाणक्य की नीति से चन्द्रगुप्त ने जो देश जीते उससे मगध की सीमा समुद्र से समुद्र तक और दक्खिन में मैसूर तक जा पहुंची।

पाटलिपुत्र का वैभव दिन-दिन बढ़ता गया। गंगा और सोन के कोन में बसे उस नगर की लम्बाई नौ मील और चौड़ाई डेढ़ मील थी। उसके इन्तजाम के लिए छः समितियां कायम थीं। चन्द्रगुप्त का राजमहल पत्थर और लकड़ी का बना था। उसके खम्भों पर वैदूर्य की बेलें कढ़ी थीं जिनपर सोने-चांदी के पक्षी बिठाए गए थे। उसके पोते अशोक ने उसे और भी विशाल बना दिया जिससे जब चीनी यात्री फाह्यान ने उसे सदियों बाद देखा तो उसे लगा कि वह राज-

महल दैत्यों का बनाया हुआ है। नगर लकड़ी के परकोटे से घिरा हुआ था जिसमें चौंसठ द्वार और पांच सौ से ऊपर बुर्जियां थीं। बाहर से रक्षा के लिए गहरी खाई दौड़ती थी।

अशोक ने पाटलिपुत्र में नये प्रकार के शासन का आरम्भ किया। प्रेम और दया उसके शासन की बुनियाद बने। उसने प्रजा का अपनी सन्तान की तरह पालन किया। पाटलिपुत्र में उसने बौद्ध संघ की सभा बुलाई और उसके भेजे बौद्ध साधु बुद्ध के कल्याणकर संदेश लेकर देश-देश में उनका प्रचार करते फिरे।

परन्तु कुछ ही काल बाद अशोक के वंशजों की कमजोरी ने देश पर आफत बुला दी। ग्रीक-यवन सरदारों ने भारत पर हमला किया और पूरब-पच्छिम दोनों ओर से उसे रौंदते साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र तक पहुंच गए। उनके सरदार दिमित ने उसे भरपूर लूटा, पर तभी अपने घर के दुश्मन से भिड़ने जो उसे लौट जाना पड़ा, तो पाटलिपुत्र को कुछ सांस लेने की गुंजाइश हुई। पर तभी उड़ीसा के खार-बेल ने भी दो-दो बार पहुंचकर उस नगर को जला दिया।

इस काल मौर्यकुल का आखिरी राजा बृहद्रथ पाटलिपुत्र में राज कर रहा था। उसके सेनापति और पुरोहित पुष्य-मित्र शुङ्ग ने राजा को सेना के सामने ही मारकर गद्दी पर अधिकार कर लिया। पाटलिपुत्र में उसने दो-दो अश्वमेध

यज्ञ किए। उनके यज्ञ के पुरोहित पाणिनि के व्याकरण का भाष्य लिखनेवाले और योगदर्शन के लेखक महर्षि पतंजलि थे। जैसे पाणिनि और चाणक्य भारत की उत्तर-पच्छिमी सीमा से आकर पाटलिपुत्र आ बसे थे, जैसे कात्यायन ने वहीं अपना व्याकरण लिखा था, वैसे ही पतंजलि भी गौड़ से आकर उस नगर में बस गए थे। उसी नगर में पुष्यमित्र की ही देख-रेख में हिन्दुओं का प्रसिद्ध मनुशास्त्र रचा गया।

शुङ्गों के बाद पाटलिपुत्र में जिस राजकुल ने राज किया वह भी ब्राह्मण ही था, कण्व राजाओं का। पाटलिपुत्र में ही शुङ्गकुल के आखिरी व्यसनी राजा देवभूति को उसके मंत्री वसुदेव ने दासी द्वारा मरवाकर नये वंश की नींव डाली। कुछ ही काल बाद दक्खिन के आन्ध्र सातवाहन कुल के ब्राह्मण राजाओं ने मगध की उस महान नगरी पर अधिकार कर लिया। पर इससे कहीं अधिक दुर्दशा उसकी तब हुई जब इन्हीं उथल-पुथल के दिनों में शकों ने इस देश में प्रवेश किया।

शक अम्लाट ने पाटलिपुत्र जीतकर वहां इतना नर-संहार किया कि पुरुष नाम की कोई चीज ही उस नगर में नहीं रह गई। चारों ओर स्त्रियों का ही राज हो गया। वे ही खेत जोततीं, वे ही सब कुछ करतीं। बीस-बीस, पचीस-

पचीस स्त्रियां एक पुरुष से विवाह करतीं। पुरुष आंखों से इतने ओझल हो गए थे कि जब कहीं वे दिखाई पड़ जाते स्त्रियां चिल्ला उठतीं—'आश्चर्य ! आश्चर्य !'

यह विदेशी प्रभुता कुछ दिन और चली। पंजाब पर कुशानों का राज हो गया था। वे चीन की ओर से आए थे। उनका प्रबल राजा कनिष्क बौद्ध हो गया था। वह कश्मीर में बौद्ध संघ की बैठक करा रहा था। जब उसने सुना कि पाटलिपुत्र में अश्वघोष नाम का महान बौद्ध पण्डित और कवि है जो आने को तैयार नहीं तब वह सेना लिए पाटलिपुत्र पहुंचा और अश्वघोष को वहां से बलपूर्वक हर ले गया।

गुप्तों ने फिर गंगा-जमुना के दोआब से निकलकर मगध पर अधिकार कर लिया और पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। समुद्रगुप्त की दिग्विजय के बाद उसकी महिमा और बढ़ी और उसके बेटे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने तो उस नगर से निकलकर चन्द्रगुप्त मौर्य की विजय-कहानी दुहरा दी।

पुराण तभी उस नगर में लिखे गए। तभी विष्णुपुराण के लेखक ने गुप्तों के साम्राज्यवाद को धिक्कारा। उसने लिखा कि जिन सम्राटों ने कहा कि 'भारत मेरा है' वे मिट गए। राम के अस्तित्व में भी अब संदेह होने लगा है तब

गुप्तसम्राटों का यश कब तक बना रहेगा ? राम के राज्य को धिक्कार ! ऐश्वर्य को धिक्कार !

गुप्तों का साम्राज्य हूणों ने तोड़ डाला। तब से पाटलिपुत्र का अभाग्य शुरू हुआ। उस नगर का आगे का इतिहास पतन का है। कभी तो दूर-पास के राज्यों के रतन-मणि के भण्डार उस नगर में भेंट के रूप में आते थे, अब सदैव उनके हमलों का डर बना रहने लगा। धीरे-धीरे उस नगर की लक्ष्मी कन्नौज में जा बसी। जो शक्ति और वैभव कभी पाटलिपुत्र का रहा था वह अब कन्नौज का हुआ, पहले मौखरियों का फिर हर्ष का।

पाटलिपुत्र के पश्चिम में गौड़ का प्रबल राज था और पूरब में कन्नौज का। कभी बंगाल के पाल प्रतिहारों के कन्नौज पर हमला करते, कभी कन्नौज के प्रतिहार पालों के साम्राज्य पर; और बीच में पाटलिपुत्र रौंदा जाता। गहड़वालों ने जब काशी को दूसरी राजधानी बनाकर गया तक पृथ्वी जीत ली तब पाटलिपुत्र भी कुछ साल उनके अधिकार में रहा।

मुसलमानों के हमले शुरू हुए और गोर के शहाबुद्दीन का सेनापति बख्त्यार नालन्दा को जलाता पाटलिपुत्र को रौंदता गौड़ जा पहुंचा। बलबन के रिसाले उस नगर के पास से निकल गए। पठानों, खिलजियों, तुगलकों ने बारी-बारी से उसकी बची आबरू लूटी, पर जब सहसराम के

शेरशाह ने उसपर अधिकार किया तब कहीं उसे कुछ काल के लिए शान्ति मिली।

यह पहला मौका था जब बाहर के प्रान्तों के एक व्यक्ति ने दिल्ली के तख्त को छीन लिया था। पाटलिपुत्र के पड़ोस से उठकर उस भोजपुरी पठान ने भोजपुरिया वीरों को अपनी हरावल में लिए राजपूतों की वीरभूमि रौंद डाली और पंजाब से मालवा और गुजरात तक अपने कब्जे में कर लिया। उसने मुगल सम्राट हुमायूं को देश से बाहर निकाल दिया। पर शेरशाह के मरते ही हुमायूं लौटा और कुछ ही साल बाद महान अकबर दिल्ली के तख्त पर बैठा। उसे बेदखल करने जब बंगाल की ओर से हेमू विक्रमाजीत बढ़ा तब उसने पटना में पड़ाव डाले। पाटलिपुत्र अब पटना कहलाने लगा था।

पटना मुगलों के हाथ में बना रहा। पूरब में उनकी पकड़ कमज़ोर पड़ते ही बंगाल के सूबेदारों ने उसपर कब्ज़ा कर लिया। सिक्खों के गुरु गोविन्दसिंह ने वहां जन्म लेकर उस नगर को पवित्र किया था। अब फिरंगियों ने उसे अपने स्पर्श से अपवित्र कर दिया। सिराजुद्दौला और मीर जाफर के नष्ट हो जाने पर नवाब मीर कासिम ने पाटलिपुत्र को नवजीवन-दान दिया। अंग्रेजों के दांव-पेच की चोट खाए जब वह पटना पहुंचा तब वह नगर अकाल के
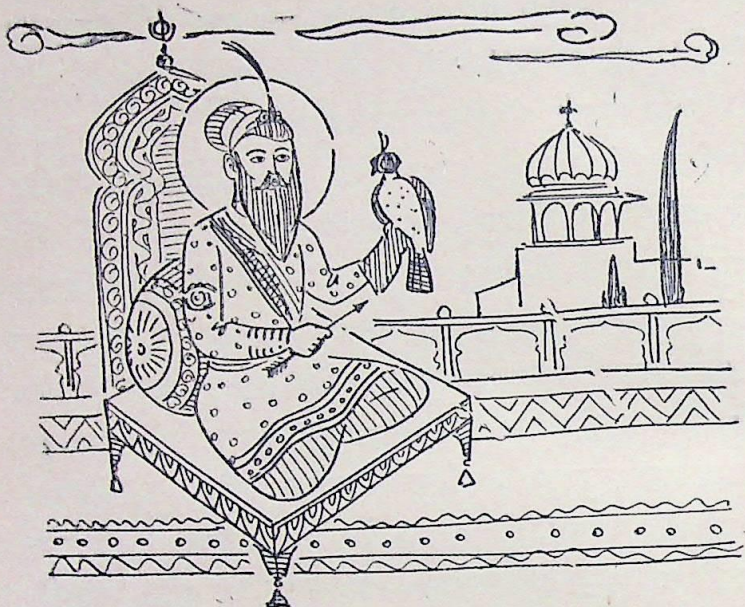
गाल में पड़ा था। 'गोलघर' में असीम अन्न भरकर उसने प्रजा की रक्षा की। तभी फिरंगियों का हत्याकांड पटना में हुआ।

कम्पनी की जालसाजी और दुःशासन से चिढ़कर उत्तर भारत की जनता ने बगावत की। आजादी की लहर देश में बह चली। पटना में भी वह लहर सन् सत्तावन में उठी। ८० वर्ष के बूढ़े कुंवरसिंह ने बिहार की सरदारी अपने हाथ में ली। उस बांके लड़ाके के तेवर पटना ने खूब देखे, पर गदर कामयाब न हो सका। अंग्रेजों ने उसे कुचल दिया।

करीब तीस बरस बाद कांग्रेस ने नये सिरे से आजादी की लड़ाई शुरू की।

सन् १६२० में महात्मा गांधी के असहयोग-आन्दोलन ने कांग्रेस की लड़ाई को एक नया रुख दिया और पटना भी अपनी कुर्बानियों की बदौलत अमर हुआ। उसीके चम्पारन इलाके में पहले-पहल महात्मा गांधी ने अपना सत्याग्रह-आन्दोलन चलाया। पटना की कैम्प जेल उसके नगर और देहात के बलिदानों का प्रतीक बनी। उसके बैरिस्टर और वकील, प्रोफेसर और मुहर्रिर, किसान और मजदूर आजादी की उस लड़ाई में कूद पड़े।

और बाद में तो सन् १६४२ में अन्यत्र की ही भांति पटना में भी एक तूफान फट पड़ा। जेलें टूट गईं, कचहरियां लुट गईं, थाने जल गए, रेलें उखड़ गईं। हिन्दुस्तानी कौम ने करवट ली थी।

सरकार ने पटना में बदले की तैयारी की। सड़कों पर टैंक दौड़ने लगे, आसमान में बमबाज उड़ चले, तोपें घहराने लगीं, फौजें फिरने लगीं। गांव जला डाले गए, गोलियों ने शहीदों की छाती फाड़ दी, पिताओं के सामने पुत्र टूक-टूक कर डाले गए। नारियों के सुहाग लुट गए। पर जनता आजादी के कौल से न हिली, न हिली। आजादी लेकर ही रही।

यह इतिहास है पाटलिपुत्र का, ढाई हजार साल पुराना,

काल की गति पर लिखा, पर सूरज-चांद-सा चमकता। सदियों की दूरी उसके महान निर्माताओं के चरित्र; पाणिनि, चाणक्य, अशोक, पतंजलि, विक्रमादित्य, मीर कासिम के नाम धूमिल न कर सकी। उसी पटना को संवारनेवाला, उसका नेता राजेन्द्रप्रसाद, भारत का प्रथम राष्ट्रपति हुआ।
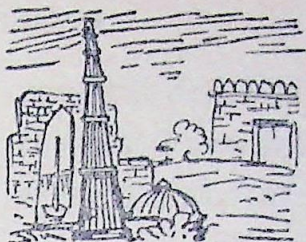
# ६ | दिल्ली

दिल्ली साम्राज्यों की समाधि है। उसकी रज में अनेक विभूतियां सोई हैं। सही, वह इतनी प्राचीन नहीं है जितने देश-विदेश के अनेक दूसरे नगर, पर किस्मत के जितने उलटफेर उसने देखे हैं उतने न काशी ने देखे, न दमिश्क ने, न प्रयाग ने, न बगदाद ने, न उज्जयिनी ने, न समरकन्द ने, न वैशाली ने, न काहिरा ने। प्रतीहार, गहड़वाल, चौहान, गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद, लोधी, सूर, मुगल, अंग्रेज सब एक-एक कर उसके सामने से गुजर गए, जिन्हें उसने कही हुई कहानी की तरह भुला दिया।

दिल्ली ने बेटे द्वारा बाप का खून देखा, खानदान के खानदान का नाश देखा, कत्लेआम झेला, पर एक आंसू न डाला। ज़माना उसपर अपने कारनामों की चादर पर चादर डालता चला गया और आज उसपर इतिहास के परत के परत पड़े हैं, चाहे जहां से खोलिए, दिल दहला देने-वाले नज़ारे आंखों में उभर आते हैं।

उसके एक भाग में इन्दरपत का गांव है, शायद उसी स्थान पर खड़ा है जहां कभी पांडवों की राजधानी इन्द्रप्रस्थ

बसा था। पर आज की दिल्ली की बुनियाद तो तोमरों की डाली हुई है। उन्होंने ही कुतुब के पास खड़ी वह अन्यत्र से लाकर लोहे की लाट गाड़ी जिसपर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की विजयों का उल्लेख है।

दिल्ली कन्नौज के अधिकार में थी और जब-जब कन्नौज के मालिक बदले उसके स्वामी भी बदल गए। प्रतीहारों से उसे गहड़वालों ने, और गहड़वालों से चौहानों ने छीना। मुसलमान इतिहाकारों का 'राय पिथौरा' और भारतीय कथाओं के ललित नायक पृथ्वीराज ने उसे विशेष गौरव दिया। उसके शासन में चन्देलों के कालिंजर-महोबे पर अधिकार करती, कन्नौज से लोहा लेती दिल्ली उत्तर भारत के नगरों की मुकुटमणि बन गई।

गोर के शहाबुद्दीन को पानीपत के मैदान में दिल्ली के उस लड़ाके ने ऐसी मार मारी कि पठान जो वहां से भागे तो उनके पैर सिन्ध के पार ही जाकर रुक सके। पर शाह-बुद्दीन फिर लौटा। इस बीच दिल्ली और कन्नौज में गहरी अनबन हो गई थी। कन्नौज दिल्ली की मदद को न आया, दिल्ली सर हो गई, उसके राजा राय पिथौरा को सरस्वती के तीर पकड़कर तलवार के घाट उतार दिया।

गोरी के सेनापति गुलाम कुतुबुद्दीन ने दिल्ली में गुलाम-कुल की नींव डाली। एक के बाद एक गुलाम बादशाह उस

नगरी की गद्दी पर बैठे और ज़माने ने रंक से राजा बनते बार-बार देखा। तभी उस महान नगरी के रोंगटे एकाएक खड़े हो गए। क्योंकि चंगेज़ख़ां के 'ख़ुदाई कोड़ों' ने उधर रुख किया था। चंगेज़ जिधर निकल जाता उधर सुलगते गांवों के ढेर लग जाते, गरम लहू का दरिया बह जाता। ज़माना उससे थर्रा उठा था। वही चंगेज़ भेड़ियों-सरीखे अपने मंगोलों को लिए ख़्वारिज़्म के शाह जलालुद्दीन पर टूट पड़ा था। भागता जलालुद्दीन काबुल से जा टकराया, फिर पहले यिल्दिस, पीछे जलालुद्दीन, उसके पीछे चंगेज़ एक के बाद एक सिन्ध के किनारे आ धमके। दिल्ली दम साधे चुपचाप खड़ी थी। चंगेज़ जलालुद्दीन को सिन्ध में ढकेल लौट गया, दिल्ली की जान में जान आई। यिल्दिस और कुबाचा इतिहास से मिट गए। दिल्ली बाल-बाल बच गई।

अल्तमश के बाद पहली बार दिल्ली के तख्त पर औरत बैठी, उस सुल्तान की बेटी रज़िया। पर वह ज़माना औरत का न था और रज़िया को उस गुस्ताखी का बदला अपने ख़ून से चुकाना पड़ा। उसका भाई नेक नासिरुद्दीन तब दिल्ली का सुल्तान हुआ जो कुरान की नकल कर अपनी रोज़ी कमाता था। उसके बाद अलवास का तुर्क बलबन अल्तमश का गुलाम, भोंड़ा, नाटा, बदसूरत, क्रूरता, दिलेरी, अक्ल में लासानी, अपनी लियाकत से उस तख्त का हकदार हुआ।
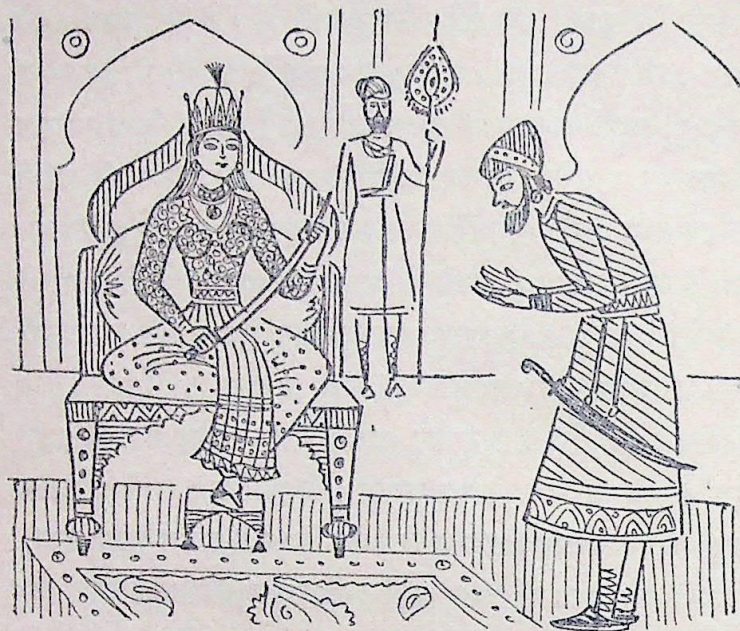
खुसरो उसीके दरबार में था, उसके बेटे मुहम्मद का संरक्षित खुसरो हिन्दी-उर्दू खड़ीबोली का पहला कवि था; हिन्दुस्तानी तर्ज पर मुसलमानों में पहला गायक—जिसने भारतीय संगीत को अनेक राग दिए।

बलबन ने दिल्ली की चोरी-डकैती बन्द कर दी। पर उसका सख्त मिज़ाज भी उस महानगरी की मंगोलों से रक्षा न कर सका। उसके बंगाल जाने पर मंगोल आए, नगर को लूट लिया, मुहम्मद को मार डाला। बलबन हज़ार धार

रोया। सिर के बाल खींच-खींच, सिर पर धूल डाल-डाल। और उसके बाद तो शाही खानदान के बच्चे-बूढ़े हकदारों के खून से दिल्ली का तख्त लाल हो गया। और तभी अमीरों ने जलालुद्दीन खिलजी को वह तख्त सौंप दिया।

पर दिल्ली का तख्त जलालुद्दीन के से नेकदिल बादशाहों के लिए न था। नेकी उस जमाने का सबसे बड़ा दुर्गुण था। तब केवल कुत्ते की नींद सोनेवाला, कौए की तरह सतर्क और बाज की तरह मौका पाते ही शिकार पर टूट पड़नेवाला सफल हो सकता था। जलालुद्दीन का भतीजा और दामाद अलाउद्दीन ऐसा ही बाज था। चचा ने उसे सूबा दिया, प्यार दिया, भतीजे ने प्यार से गले लगाते चचा की छाती में कटार भोंक दिल्ली की गद्दी हथिया ली। अमीरों के मुंह उसने देवगिरि की लूट के सोने से भर दिए। पिछले सुल्तान के सारे रिश्तेदारों को तलवार के घाट उतार दिया।

अलाउद्दीन सख्त था, उसकी हकूमत बेरहम थी, विशेषकर हिन्दू रियाया के लिए उसने देश में गजब की सख्ती कर दी। सारा नगर डर और सदमे से बेहाल रहता था। शराब और दावतें उसने बन्द कर दीं, अमीरों में शादी-ब्याह बन्द कर दिए। लोग डर के मारे फुसफुसाकर बात करते, भेदियों के कान दीवारों से लगे रहते, मुहाविरा ही चल निकला- 'दीवारों के भी कान होते हैं।'

दिल्ली सल्तनत की सीमाएं दूर-दूर तक फैल गईं। दूर-दूर से आए धन से उसके खज़ाने भर गए। अलाउद्दीन का सेनापति हाल का मुसलमान मलिक काफूर देश को रौंदता दक्खिन रामेश्वरम् तक चला गया। दिल्ली के सुल्तान ने अगर कहीं नीचा देखा तो चित्तौड़ में रानी पद्मिनी के आगे, पर अगले ही साल अलाउद्दीन ने दिल्ली के अपमान का बदला चित्तौड़ को धूल में मिलाकर लिया। दिल्ली अब बेजोड़ थी, नगरों की रानी।

अलाउद्दीन के बाद फिर नगर में रक्त उछाला जाने लगा। अमीरों ने गयासुद्दीन तुग़लक को गद्दी दे दी। अलाउद्दीन के महल वीरान कर दिए गए, तुगलकाबाद नई दिल्ली बना। बेटा मुहम्मद बाप के स्वागत के लिए बढ़ा जब बाप बंगाल की बगावत दबाकर लौटा। स्वागत का पंडाल एकाएक बैठ गया और बाप, केवल बाप इस दुनिया से चल बसा। उस मौत का भेद किसीने न जाना पर उसीके परिणाम से बेटा गद्दी पर बैठा जो इतिहास में लायक और पागल दोनों कहा गया है।

तर्क, दर्शन, गणित का असाधारण जानकर, फारसी-अरबी का गज़ब का आलिम, लिखने में एक ही चतुर मुहम्मद तुगलक अन्त में दिल्ली का शत्रु साबित हुआ। उसने दक्खिन दौलताबाद का नाम देवगिरि को देकर दिल्ली की

प्रजा को वहां भेजा। लाखों मर गए, दिल्ली वीरान हो गई। दौलताबाद भी बस न सका और सुल्तान ने रियाया को उल्टे पांव दिल्ली लौटने का हुक्म दिया। जो लौट सके उन्हें दिल्ली में खाना न मिला। दिल्ली बरबाद हो चुकी थी।

उन्हीं दिनों उस नगर में अरब यात्री इब्नबतूता आया, जिसने लाशों-भरी दिल्ली देखी और आंखों देखा हाल लिखा। फिरोजशाह तुगलक ने दिल्ली को फिरोजाबाद के नाम से नये सिरे से बसाया। वहां उसके वजीर खानानेखान मकलबूखां का संसार-प्रसिद्ध हरम था जहां उसकी दो हजार बीवियां थीं, बेगमें जैतूनी रंग की ग्रीक से लेकर पीली चीनी तक।

उसके बाद दिल्ली का वही हाल हुआ जो गुलाम और खिलजी सुल्तानों के बाद हुआ था। चारों ओर खौफ छा गया। इसी बीच वह घटना घटी जिसकी याद में रोंगटे खड़े हो जाते हैं। तैमूर अपने रिसाले लिए सामने आसमान में धूल के बादल उठाता दिल्ली के सामने आ धमका। सात रोज की राह चलकर आया था वह गांवों को लूटता-जलाता, घण्टे-घण्टे-भर में दस-दस हजार की भीड़ को तलवार के घाट उतारता। दिल्ली के दिल की धड़कन सात रोज़ तक बन्द रही। शहर के अमीर शहर बख्श देने के लिए मुंहमांगी दौलत देने को राजी हुए। पर लेन-देन में

पीछे जो कुछ दिक्कत हुई तो तैमूर ने अपने भेड़िये छोड़ दिए। जाड़े के दिन थे, दिसम्बर का महीना। खुरासानी और मंगोल दिल्ली के महलों पर टूट पड़े। बालक, बूढ़ा, औरत कोई न बचा। गलियां खून उगलने लगीं। दिल्ली बरबाद हो गई।

बची-खुची दिल्ली को फिरोज के बेटे ने बरबाद कर दिया। महलों में तलवारें चमकीं और भाई ने भाई का खून उलीचा। तब दौलतखां लोदी ने राजदण्ड उनके कमज़ोर हाथों से छीन लिया। सैयदों के बाद पहले बहलोल सुल्तान हुआ फिर सिकन्दर और अन्त में इब्राहीम। इब्राहीम के व्यवहार से उसके दोस्त-दुश्मन सभी भड़क उठे। मेवाड़ के राणा सांगा ने दो-दो बार उसे हराकर दिल्ली का सिर नीचा कर दिया।

फिर इब्राहीम के दुश्मनों ने तैमूर और चंगेज़ के वंशज काबुल के बादशाह बाबर को बुला भेजा। बाबर समरकंद की अपनी रियासत अनेक बार जीत-हार चुका था और अब हिन्दुस्तान जीतने की ताक में था। दिल्ली पर वह तत्काल चढ़ दौड़ा। इब्राहीम पानीपत के मैदान में उससे मिला पर उसकी एक लाख सेना बाबर ने इस देश में पहली बार तोप और बारूद का इस्तेमाल कर तितर-बितर

कर दी। दिल्ली का राजकुल फिर बदला। अब मुग़ल उसके राजा हुए, अपनी नई आनबान लिए।

पर बाबर को दिल्ली नहीं भाई। दिल्ली में वह रहा नहीं। हुमायूं को शेरशाह ने दिल्ली छोड़ने को मजबूर कर ही दिया। स्वयं शेरशाह जब गद्दी पर बैठा तब दिल्ली की विचलित लक्ष्मी कुछ स्थिर हुई। अनेक नये सूबे दिल्ली के अधिकार में आए। उसके बीच से निकल अनेक सड़कें पूरब-पच्छिम दौड़ीं, पहली बार डाक का इन्तज़ाम हुआ, सुन्दर सिक्के ढले।

शेरशाह के मरते ही हुमायूं दिल्ली लौटा पर उसके भाग में उस महान नगरी का भोग बहुत दिनों लिखा नहीं था। और महल की सीढ़ियों से फिसलकर वह एक दिन इस लोक से चलता बना। तब दिल्ली संसार के बादशाहों में नमूना अकबर के अधिकार में आई। इतना बुद्धिमान, इतना उदार, इतना इंसाफपसन्द और हिन्दू-मुसलमानों को बराबर समझनेवाला बादशाह उस तख्त पर कभी न बैठा। पर वह दिल्ली अधिकतर रहता न था। आगरा और फतहपुर सीकरी, जिसे उसने बनाया-बसाया था, उसे अधिक प्रिय थे।

अकबर का बेटा जहांगीर और पोता शाहजहां अधिकतर दिल्ली ही रहे। शाहजहां तो बड़ा शालीन बादशाह था। दिल्ली को उसने सुन्दर इमारतों से भर दिया। लाल किले
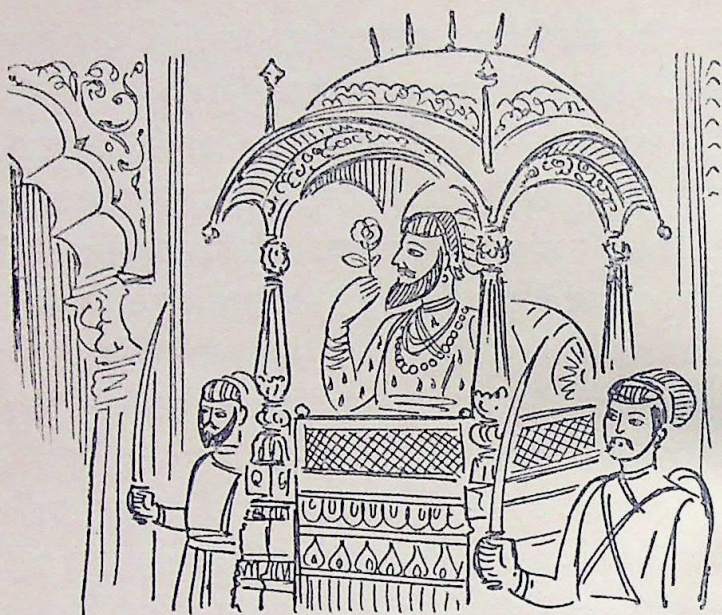
के अनेक भाग, जामा मस्जिद आदि उसीने बनवाए। औरंगजेब ने फिर भी दिल्ली पर विशेष कृपा की। उसने उसे ही अपनी राजधानी बनाया। अपने पिता शाहजहां की बसाई नई दिल्ली शाहजहानाबाद में उसने डेरा डाला और लम्बे काल तक देश पर सख्ती से हकूमत करता रहा।

औरंगजेब के बाद मुगलों का साम्राज्य लड़खड़ाकर गिर पड़ा। छोटे-मोटे बादशाह दिल्ली के तख्त पर बैठते रहे पर उसकी रौनक फिर नहीं लौटी। बहादुरशाह, जहांदारा, फरुखसियर एक-एक कर चुपचाप गुजर गए। मुहम्मदशाह

के जमाने में ईरान का खूंखार गड़रिया नादिरशाह राह के गांव-नगर लूटता दिल्ली में घुसा और नगर में एक बार फिर कुहराम मच गया। तीन दिन लगातार कत्लेआम जारी रहा। लाखों मार डाले गए। तब धन-राशि और प्रसिद्ध कोहनूर हीरा लेकर नादिरशाह इस देश से लौटा। वह हीरा कभी ग्वालियर के राजा ने हुमायूं को भेंट किया था, अब भारत से बाहर चला गया।

उधर मरहठों की आंधी दक्खिन-पच्छिम में उठती आ रही थी और एक दिन प्रान्त पर प्रान्त जीतते वे दिल्ली तक आ पहुंचे। बादशाह को उन्होंने कैद में डाल दिया और दिल्ली उनके इशारों पर नाचने लगी। तभी एक बार और उस महान नगरी की किस्मत का फैसला हुआ, जब पानीपत के मैदान में अफगानिस्तान के अहमदशाह अब्दाली की शक्ति मरहठों की शक्ति से टकराई। जीत अब्दाली के हाथ रही और दिल्ली से मथुरा तक की सड़कें जनता की लाशों से भर गईं। पर अब्दाली दिल्ली में टिका नहीं, लौट गया। न मरहठे ही वहां टिके। एक नई शक्ति देश में उठ रही थी।

वह शक्ति फिरंगियों की थी। अकबर के जमाने से ही अंग्रेज़ रोजगार के लिए भारत आने लगे थे। धीरे-धीरे मुगलों की कृपा से उनका रोजगार बढ़ा, पर जैसे-जैसे दिल्ली

की ताकत घटती गई वैसे ही वैसे वे प्रांत की रियासतों में वे बलवान होते गए और एक दिन प्लासी की लड़ाई जीतकर वे बंगाल के स्वामी बन गए। कुछ ही दिनों बाद दिल्ली के बादशाह शाहआलम से उन्होंने बंगाल और बिहार की दीवानी ले ली और इस देश पर कंपनी का राज कायम हुआ।

सन् सत्तावन में देश ने बगावत की। दिल्ली का बहादुरशाह उसके नेताओं में से था। दिल्ली में भी विद्रोह की आग भड़की पर पंजाब को अंग्रेजों ने दिल्ली से लड़ा दिया। विद्रोह दब गया। राजधानी दिल्ली से हटकर कलकत्ता चली गई। १९११ में राजधानी फिर दिल्ली लौटी जब जार्ज पंचम का लाल किले में अभिषेक हुआ। दिल्ली के राजा-सुल्तान, अच्छे चाहें बुरे, अब तक इसी देश के रहे थे, अब उसके राजा समुन्दर-पार के थे, सदा समुन्दर-पार के ही बने रहे। दिल्ली के राजा अब विदेशी थे।

कांग्रेस के आजादी के आन्दोलनों में दिल्ली ने भी खुलकर भाग लिया। क्रांतिकारी नवयुवकों ने बार-बार इस नगरी में कुर्बानियां कीं और एक दिन मजबूर होकर अंग्रेज सरकार को हिन्दुस्तान के साथ-साथ दिल्ली को भारतीयों के हवाले कर देना पड़ा। पर समूचा हिन्दुस्तान नहीं, उसके टुकड़े-टुकड़े करके। भारत और पाकिस्तान अब दो राष्ट्र

बने। पच्छिमी पंजाब, सीमा प्रांत, सिन्ध और पूरबी बंगाल मिलकर पाकिस्तान बने।

इस बंटवारे ने आजादी की शक्ल बदल दी। फिर भी दोनों की अपनी-अपनी सरकारें बनीं और दिल्ली ने अपनी दुनिया नये सिरे से संभाली। पर ठीक तभी एक नया तूफान उठ खड़ा हुआ। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में अंग्रेजों की साजिश से हिन्दू-मुसलमान जूझ मरे। नोआखली और पूरबी बंगाल, बिहार और दिल्ली, पंजाब और सिन्ध में इन्सान इन्सान के खून का प्यासा बन गया। रक्त की धारें बह चलीं। पंजाब और बंगाल की पिटी-उखड़ी जनता हिन्दुस्तान की ओर चली। हिन्दुस्तान की पिटी-उखड़ी जनता पाकिस्तान की ओर।

दिल्ली की सड़कें-गलियां भी लहूलुहान हो गईं। तैमूर और नादिर जो न कर सके थे अंग्रेजों के जुझाए देशी इन्सान ने दिल्ली में वह किया। और तभी जब इन चोटों से दिल्ली बिलख रही थी, उसकी जमीन पर वह घटना घटी जिसकी जोड़ की घटना इतिहास में ढूंढ़े न मिलेगी। भारत की आजादी की लड़ाई के सबसे महान नेता, शांति और अहिंसा के पुजारी, हिन्दू-मुसलमानों को भाई-भाई होकर रहने का उपदेश देनेवाले, नये भारत के निर्माता और देवता-तुल्य महात्मा गांधी की दिल्ली में हत्या हो गई।

फिर तो दिल्ली के घर-घर से इतनी कराह उठी, उसकी ज़मीन पर इतने आंसू गिरे कि इतिहास दंग रह गया। दिल्ली ने इतना महान, इतना मूल्यवान अपनी बीती सदियों में कभी कुछ नहीं खोया था, कोहनूर तक नहीं।

यह दिल्ली की कहानी है, रक्त-भरी, आंसू-भरी। उसकी कहानी साम्राज्य के उठने-गिरने की कहानी है। पर आज वह नई साध लिए डग भर चली है, शांति और ईमान के असूल लिए। एशिया के अनेक राष्ट्र उसीकी ओर आशा की लौ लगाए देख रहे हैं।

०००

لگا ہمیں بھی ملا کرو دل لگی دل سے ملتا ہے

مگر وہ اک چاہنے والا - بڑی مشکل سے ملتا ہے

ٹوٹے نا دل توڑنا - جب تو پیار چھوڑنا نا
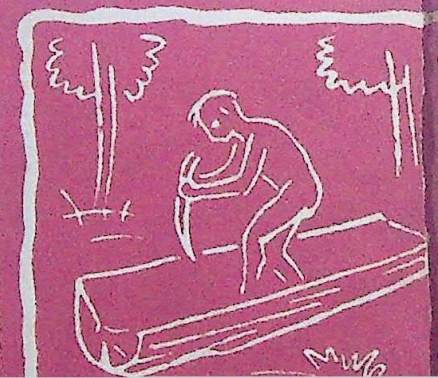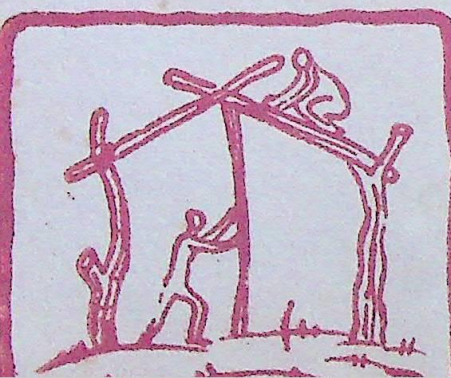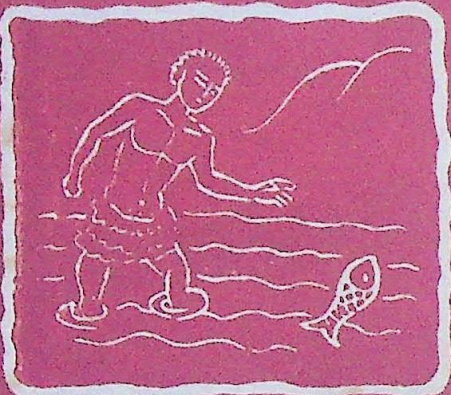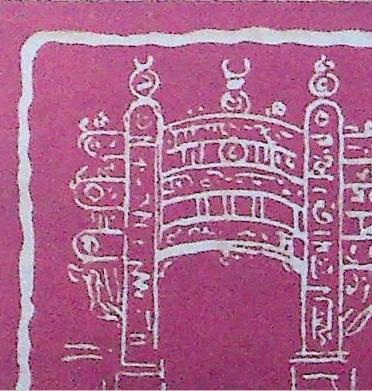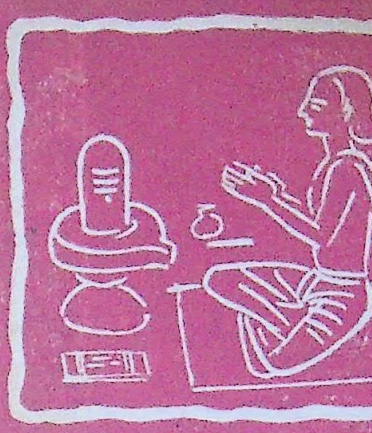
# स्वदेश-परिचय-पुस्तकमाला

यह पुस्तक-माला भारत के सम्बन्ध में एक ज्ञानकोश के समान है। हमें अपने देश के वैभव से अवश्य परिचित होना चाहिए। मोटा टाइप, सरल भाषा और आकर्षक बहुरंगा कवर।

## भगवतशरण उपाध्याय द्वारा लिखित

| | |
|---|---|
| भारत की कहानी | १·२५ |
| भारतीय संस्कृति की कहानी | १·२५ |
| भारतीय संस्कृति के विस्तार की कहानी | १·७५ |
| भारतीय नगरों की कहानी | १·२५ |
| भारतीय नदियों की कहानी | ०·७५ |
| भारतीय साहित्यों की कहानी | १·२५ |
| भारती: चित्रकला की कहानी | १·२५ |
| भारतीय मूर्तिकला की कहानी | १·२५ |
| भारतीय संगीत की कहानी | १·२५ |
| भारतीय भवनों की कहानी | १·२५ |
| कितना सुन्दर देश हमारा | १·२५ |

प्रत्येक पुस्तक में अनेक चित्र